महाकविकालिदास प्रणीतम्

श्रीरघुवंश-महाकाव्यम्

कोलाचलश्रीमल्लिनाथसूरिकृतया सञ्जीविन्या
श्रीधारादत्तमिश्रकृत–छात्रोपयोगिनी' व्याख्यया
भाषानुवादेन च सहितम्

पंचम् सर्गः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना
बंगलौर मद्रास

महाकविकालिदासप्रणीतम्

श्रीरघुवंश-महाकाव्यम्

कोलाचलश्रीमल्लिनाथसूरिकृतया सञ्जीविन्या
श्री धारादत्तमिश्रकृत—'छात्रोपयोगिनी'
व्याख्यया भाषानुवादेन च
सहितम्

पंचम् सर्गः

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना
बंगलौर मद्रास

संस्करण : १९८८

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७

शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१

अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४

२४ रेसकोर्स रोड, बंगलौर ५६०००१

१२० रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

मूल्य : रु० ६

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५
नारायणा फेज-१, नई दिल्ली-२८ द्वारा मुद्रित।

पंचमसर्ग का कथासार

महर्षि वरतन्तु का शिष्य कौत्स सम्पूर्ण विद्या प्राप्तकर गुरुदक्षिणा देने के लिये धन चाहता हुआ राजा रघु के पास तब पहुँचा जब विश्वजित् यज्ञ में राजा अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दे चुका था। सोने-चांदी के पात्र रह नहीं गये थे। अतः मिट्टी के बर्तनों में स्वागत की सामग्री लेकर यशस्वीराजा ने विद्वान् अतिथि का स्वागत किया और विधिवत् पूजा करके आसन पर बैठाकर विनम्रतापूर्वक मुनि से कहा—

हे तीक्ष्णबुद्धि मुने! जैसे संसार सूर्य से जीवन प्राप्त करता है ऐसे ही आपने जिनसे समस्त विद्याएँ पाई हैं वे मंत्रद्रष्टा ऋषियों के अग्रणी आपके गुरु कुशलपूर्वक हैं? देवराज इन्द्र के आसन को भी हिला देनेवाली उनकी शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपस्या में कोई बाधा तो नहीं आ रही ?

शीतल छाया द्वारा थकान मिटानेवाले और आलवाल आदि विविध उपायों से सन्तान की तरह पालेपोसे आपके आश्रम के वृक्षों को वायु आदि द्वारा कोई क्षति तो नहीं पहुँचती ? यज्ञादि के निमित्त लाये हुए कुशों को खाने पर भी स्नेह के कारण जिन्हें रोका नहीं जाता और मुनियों की गोद में ही जिनका प्रसव हो जाता है वे मृगियों के बच्चे तो स्वस्थ हैं ?

जिनसे आप नित्य स्नानादि और पितरों का तर्पण करते हैं तथा जिनके किनारों पर बीन-बीन कर इकट्ठे किये अन्न का छठा भाग राजकर के लिये रखा रहता है, वे जलों के घाट तो सुरक्षित हैं ? जिससे आप लोग अपना जीवन निर्वाह करते हुए समय-समय पर आये हुए अतिथियों का भी सत्कार करते हैं उस नीवारादि अन्न को जंगली पशु नष्ट तो नहीं कर रहे हैं ? क्या आपको महर्षि ने प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति दे दी है ? क्योंकि अब आपकी आयु सबका भरणपोषण करनेवाले इस आश्रम में जाने योग्य हो चुकी है।

आपके आगमन से मेरी आत्मा तब तक तृप्त नहीं होगी जब तक आपके आदेश की प्रतीक्षा करता हुआ मैं यह न जान लूं कि आपने गुरु जी के आदेश से या स्वयं अपनी इच्छा से मुझे किसलिये कृतार्थ किया।

स्वागत के लिये लाये हुए मिट्टी के पात्रों से ही दक्षिणा-प्राप्ति के विषय में निराश हुआ कौत्स राजा रघु की उदार वाणी सुनकर बोला—

हे राजन् हम लोग सब तरह से कुशल हैं। सूर्य के रहते जैसे अन्धकार की कल्पना ही नहीं की जा सकती ऐसे ही तुम जैसे प्रजावत्सल शासक के रहते किसीका कोई अनिष्ट कैसे हो सकता है ? पूजनीय जनों के प्रति भक्ति की भावना रखना आपके वंशजों की परम्परा रही है। आपकी श्रद्धा उनसे भी आगे बढ़ी है। मुझे दुःख है कि मैं समय बीत जाने पर याचना हेतु यहाँ आया हूं। वनवासियों द्वारा दाने निकाल लेने पर जैसे अन्न का ठूंठ रह जाता है ऐसे ही सत्पात्रों को सर्वस्व देकर आप भी अकिंचन रह गये हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी के एकछत्र राजा होकर भी यज्ञ करके आपका अकिंचन होना उचित ही है क्योंकि देवताओं द्वारा क्रमसे सारा अमृत पी लेने के बाद ही तो चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ने लगती हैं।

हे राजन् ! मुझे गुरुदक्षिणा निमित्त धन अर्जित करने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है। अतः मैं इसके लिये अन्यत्र प्रयत्न करूंगा। आपका कल्याण हो। बरस कर रिक्त हुए बादल से चातक भी पानी नहीं मांगता।

इतना कहकर चलने को उद्यत हुए कौत्स से राजा ने कहा—हे विद्वन् ! आपने गुरुदक्षिणा में क्या देना है और कितना देना है ?

विश्वजित्-जैसे विशिष्ट यज्ञ करने पर भी अभिमान जिसे छू तक नहीं गया है ऐसे वर्णाश्रमों के रक्षक उस राजा के वचन सुनकर ब्रह्मचारी रुक गया और बोला—विद्याध्ययन समाप्त कर मैंने गुरु से दक्षिणा देने की आज्ञा चाही, किन्तु उन्होंने चिरकाल तक की मेरी भक्ति को ही पर्याप्त समझा। किन्तु मुझे सन्तोष न हुआ, मैं पुनः गुरुदक्षिणा का आग्रह करने लगा। इसपर रुष्ट होकर गुरुजी ने मेरी धनहीनता का विचार न करते हुए कह दिया—मैंने तुम्हें १४ विद्याएं पढ़ाई हैं। अतः १४ करोड़ स्वर्णमुद्रा दे दो। हे राजन् ! तुम्हारे पूजा के पात्रों से ही मैं समझ गया हूं कि तुम केवल नाम के ही प्रभु रह गये हो। मेरी मांग बहुत बड़ी है, अतः मैं तुमसे आग्रह नहीं कर सकता।

विद्वान् ब्राह्मण के वचन सुनकर तेजस्वी सम्राट् रघु ने फिर कहा—हे मुने ! एक शास्त्रज्ञ विद्वान् गुरुदक्षिणा के लिये द्रव्य की याचना करने राजा रघु के पास आया। वहां उसकी कामना पूरी नहीं हो सकी और वह दूसरे दाता के पास चला गया। यह अपयश मेरे लिये नया होगा जिसे मैं सहन न कर सकूंगा। अतः आप कृपाकर दो तीन दिन मेरी अतिथिशाला में रुकें। मैं आपके लिये द्रव्य का प्रयत्न करता

हूं। सत्यवक्ता रघु के कथन पर विश्वास करके कौत्स रुक गया और रघु ने सोचा पृथ्वी का सारा सर्वस्व लेकर तो मैंने दान कर दिया; अब इतनी बड़ी धनराशि के लिये कुबेर पर चढ़ाई की जाय। क्योंकि जैसे वायु बादलों को जहां चाहे वहाँ ले जाता है वैसे ही वसिष्ठ जी के मंत्रों के अभिषेक के प्रभाव से राजा रघु का रथ भी जल, स्थल और आकाश में बेरोकटोक जा सकता था।

उस रात शस्त्रों से सुसज्जित होकर रघु रथ पर ही सोया जैसे प्रातः किसी साधारण सामन्त को जीतने जाना हो। जब वह सोकर उठा तो कोश-रक्षकों ने सूचना दी कि रात में आकाश से हुई सुवर्ण की वर्षा से खजाना भर गया है। राजा ने वह सारी सुवर्ण-राशि कौत्स को दे दी। परन्तु कौत्स अपनी गुरुदक्षिणा से कुछ भी अधिक लेने को तैयार न था। अयोध्यावासी उन दोनों के चरित्र को श्रद्धा से देख रहे थे। एक याचक की चाह से कई गुना अधिक देनेवाला दाता और दूसरा अपनी आवश्यकता से रत्तीभर भी अधिक न लेनेवाला याचक।

इसके बाद ऊंटों और खच्चरों पर सुवर्णराशि लादकर चलते हुए कौत्स ने राजा को आशीर्वाद दिया—हे राजन् यह पृथ्वी तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूरी करती है। इसमें क्या आश्चर्य है ? तुम तो अपने प्रभाव से स्वर्ग को भी दुह लेते हो। ऐसे सामर्थ्यशाली व्यक्ति को कुछ भी आशीर्वाद देना केवल पुनरुक्ति ही होगी। अतः जैसे आपके पिता ने आप-जैसा प्रशंसनीय पुत्र प्राप्त किया ऐसे ही आप भी अपने-जैसा गुणवान् पुत्ररत्न प्राप्त करें। यह आशीर्वाद देकर ब्राह्मण अपने गुरु के पास चल दिया और जैसे संसार सूर्य से प्रकाश पाता है ऐसे ही राजा को पुत्र की प्राप्ति हुई।

ब्राह्म मुहूर्त में रानी ने कार्तिकेय-जैसे तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। अतः ब्रह्म के नाम पर उसका 'अज' नाम रखा गया। जैसे एक दीपक से वैसा ही दूसरा दीपक जलकर प्रकाश करता है उसी प्रकार रूप, गुण, तेजस्विता, पराक्रम और डीलडौल में भी वह ठीक रघु-जैसा ही था। गुरुओं से विधिवत् विद्या प्राप्त कर वह जवान हो गया तो राज्यलक्ष्मी उसे ऐसे चाहने लगी जैसे कोई गम्भीर कन्या पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हो।

उसी समय विदर्भदेश के राजा भोज ने अपनी बहिन इन्दुमती के स्वयंवर में अज को बुलाने के लिये रघु के पास दूत भेजा। रघु ने भी विदर्भनरेश को अपना कृतसम्बन्धी समझकर और पुत्र को विवाह योग्य जानकर सेना सहित अज को विदर्भ की राजधानी के लिये भेज दिया।

मार्ग में जहाँ-जहाँ युवराज अज का डेरा पड़ता था वहाँ आसपास के लोगों द्वारा लाई गई भेंट से तम्बू भर जाते थे। उद्यानों और क्रीड़ास्थलों की सारी सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध हो जाती थीं। ऐसा ही एक पड़ाव नर्मदा के किनारे पड़ा जहाँ मार्ग की धूल से लथपथ सेना को नदी-जल से आर्द्र और नक्तमाल वृक्षों की शीतल वायु से बड़ी शान्ति मिली।

इसी समय एक जंगली हाथी, जिसके गण्डस्थल जल से धुल जाने से अब स्वच्छ हो गये थे किन्तु पानी के ऊपर मद की सुगन्ध से मंडराते भौंरे यह बता रहे थे कि प्रचुर मद बहाता हुआ यह इस जल के अन्दर घुसा है, जल से बाहर निकला। यद्यपि उसके शरीर की धूल साफ हो गई थी, फिर भी पत्थरों से टकराने के कारण पड़ी हुई नीली रेखाओं वाले उसके दांत बता रहे थे कि ऋक्षवान् के तटों में यह दांतों से वप्रक्रीड़ा (मिट्टी खोदना) करता रहा है। अपनी सूंड को फैलाता-सिकोड़ता और चिंघाड़ते हुए पानी को चीरता हुआ वह पहाड़-जैसा हाथी सेवार के समूह को बखेरता हुआ ज्योंही बाहर आने को हुआ उससे पूर्व उसके वेग से नदी का जल किनारे पर आ लगा।

जल से बाहर निकलते ही सेना के पालतू हाथियों को देखकर उसके कपोलों से फिर मदवारि चूने लगा और सप्तपर्ण की-सी उसकी तीव्र गन्ध से सेना के हाथी महावतों के नियन्त्रण से बाहर हो गये। रथों में जुते घोड़े अपने बन्धन तोड़कर इधर-उधर भागने लगे। चारों ओर कोलाहल मच गया। सैनिक महिलाओं को बचाने में जुट गये। अज जानता था कि वन्य हाथी को मारना शास्त्रों में निषिद्ध है, अतः उसे केवल रोकने के लिये उसने एक हलका-सा बाण उसके कपोल पर फेंका। ज्योंही वह बाण उसे लगा त्योंही वह हाथी की देह त्याग कर चमकती कान्तिवाला दिव्य शरीरधारी देवता-सा हो गया। सारी सेना आश्चर्य से उसे देखने लगी।

उसने पहले तो अज पर फूल बरसाये, फिर बोला—मैं प्रियदर्शन नाम के गन्धर्व का पुत्र प्रियंवद हूं। मतङ्ग ऋषि के शाप से हाथी हो गया था। जब मैंने अपने अपराध के लिये क्षमा मांगी तो ऋषि ने कहा था—इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न अज जब अपने बाण से तुम्हारे गण्डस्थल का भेदन करेगा तब तुम शाप से मुक्त होकर अपने दिव्य रूप को प्राप्त करोगे। मैं बहुत काल से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आज आपने मुझे शाप से मुक्त कर अनुगृहीत कर दिया। अब यदि इस उपकार के बदले मैंने आपका कोई भला न किया तो मैं कृतघ्न हो जाऊंगा और मेरा यह दिव्य रूप व्यर्थ होगा। मैं

तुम्हें यह संमोहन नाम का गन्धर्वास्त्र दे रहा हूं जिसके प्रयोग से शत्रु मोहित हो जाते हैं, हिंसा भी नहीं होती और विजय भी हाथ आ जाती है। अतः बिना किसी प्रकार की लज्जा के इसके प्रयोग और संहार की मंत्र-विधि मुझसे सीख लो। तब अज ने नर्मदा का जल हाथ में लेकर उत्तर की ओर मुख करके सब अस्त्रविद्याओं को जानते हुए भी उस संमोहन अस्त्र की प्रक्रिया को ग्रहण किया। इस प्रकार उन दोनों में मित्रता हो गई और दोनों अपने अभीष्ट स्थलों को—एक चैत्ररथ को दूसरा विदर्भ को—चल दिये।

जब अज विदर्भ की राजधानी के पास पहुँचा तो जैसे समुद्र अपनी तरंगरूप भुजाओं से चन्द्रमा का स्वागत करता है ऐसे ही राजा भोज ने प्रसन्न हृदय से उसका स्वागत किया। राजा भोज के व्यवहार से स्वयंवर में आये लोग अज को घर का स्वामी और भोज को अतिथि समझ रहे थे। विदर्भ-नरेश के अधिकारियों ने अज को सुन्दर नये सजाये हुए महल में ठहराया जिसके पूर्व द्वार पर जलकलश रखे गये थे। उस दिव्य भवन में वह ऐसा लग रहा था जैसे कामदेव युवावस्था में वास कर रहा हो। जिसके स्वयंवर में तमाम राजा एकत्रित हुए हैं ऐसी कन्यारत्न को प्राप्त करने की लिप्सा से अज को रात्रि में बड़ी देर में नींद आ पाई और प्रातः काल होते ही वैतालिकों ने उसे जगाने के लिये स्तुतियाँ गानी शुरू कर दीं—

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! उठिये, रात बीत चुकी। विधाता ने इस पृथ्वी के भार को दो भागों में बांटा है जिसके एक भाग को वहन करने के लिये आपके पिता जाग गये हैं; दूसरा आपको संभालना है। रात में जब आप सो जाते हैं तब आपके मुख की शोभा को धारण करनेवाला चन्द्रमा अब फीका पड़ने लगा है। भौंरे कमलों पर मंडराने लगे हैं क्योंकि शीघ्र ही कमल खिल जायेंगे। अतः आप भी आंख खोलें तो आंखों से कमलों का और तारिकाओं से भौंरों का सादृश्य स्पष्ट हो जायगा। प्रातः-कालीन यह सुन्दर वायु खिले हुए कमलों की सुगन्ध लेकर अब तुम्हारे मुख से निकली श्वासों की सुगन्ध लेना चाहता है। जब तक सूर्य उदय नहीं हो पाये उससे पहले ही अरुण ने अन्धकार को नष्ट कर दिया है। हे वीर! तुम-जैसे श्रेष्ठ धनुर्धर के रहते तुम्हारे पिता शत्रुओं का उन्मूलन स्वयं करेंगे क्या? गजशालाओं में हाथियों की सांकलें खनकने लगी हैं, घोड़ों के नथुनों की श्वास से सैन्धव शिलाएँ पसीजने लगी हैं, अर्थात् उनकी भी नींद खुल गई है। हे राजकुमार! सायंकाल तैयार किये फूलों के हार बिखर गये हैं, दीपक की लौ मन्द पड़ने लगी है और तुम्हारा

यह मीठी वाणी-वाला पिंजरे का तोता भी हमारी इन स्तुतियों को दुहराने लगा है ।

वैतालिकों की इन स्तुतियों को सुनकर अज शीघ्र ही शय्या छोड़कर ऐसे उठ बैठा जैसे राजहंसों की कलध्वनि से जागा हुआ ऐरावत गङ्गातट को छोड़ देता है। उठकर उसने शास्त्रोक्त विधि से नित्यकर्मों कोसमाप्त किया और कुशल परिचारकों द्वारा उचित वेशभूषा से सजाया गया वह स्वयंवर में स्थित राजसमूह में सम्मिलित हुआ ।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

पंचम सर्ग

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥१॥

सञ्जीविनी—विश्वजिति विश्वजिन्नाम्न्यध्वरे यज्ञे 'यज्ञः सवोऽध्वरो यागः इत्यमरः । निःशेषं विश्राणितं दत्तम् 'श्रणु दाने' चुरादिः । कोशानामर्थराशीनां जातं समूहो येन तं तथोक्तम्, 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इत्यमरः । 'जातं जनिसमूहयोः' इति शाश्वतः । एतेन कौत्सस्यानवसरप्राप्तिं सूचयति । तं क्षितीशं रघुमुपात्तविद्यो लब्धविद्यो वरतन्तोः शिष्य कौत्सः । 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' इत्यण्, इञोऽपवादः । गुरुदक्षिणार्थी 'पुष्करादिभ्यो देशे' इत्यत्र 'अर्थाच्चासंनिहिते' 'तदन्ताच्च' इतीनिः । अप्रत्याख्येय इति भावः । प्रपेदे प्राप । अस्मिन्सर्गे वृत्तमुपजातिः । तल्लक्षणं तु—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति ॥१॥

अन्वयः—विश्वजिति, अध्वरे, निःशेषविश्राणितकोशजातम् तम्, क्षितीशम्, उपात्तविद्यः, वरतन्तुशिष्यः, कौत्सः, गुरुदक्षिणार्थी, 'सन्' प्रपेदे ।

वाच्य०—निःशेषविश्राणितकोशजातः, सः, क्षितीशः, उपात्तविद्येन, वरतन्तुशिष्येण, कौत्सेन, गुरुदक्षिणार्थिना, प्रपेदे ।

व्याख्या—विश्वम्=जगत्, जयति=अभिभवति इति विश्वजित्, तस्मिन् विश्वजिति, अध्वरे=यज्ञे, विश्वजिन्नामके यज्ञे इत्यर्थः । कोशानाम्=निधीनाम् जातम्=समूहः इति कोशजातम्, निःशेषम्=समग्रम्, विश्राणितं=अर्पितं कोशजातम्=येन सः निःशेषविश्राणितकोशजातः, तं तथोक्तम् । तम्=पूर्वोक्तम् क्षितेः=पृथिव्याः, ईशः=स्वामी क्षितीशः, तं क्षितीशम्, राजानं रघुम् इत्यर्थः

उपात्ताः=गृहीताः, विद्याः=चतुर्दशविधाः येन सः उपात्तविद्यः। वरतन्तोः तन्नामकगुरोः, शिष्यः=छात्रः वरतन्तुशिष्यः। कौत्सः=कौत्सनामा। अर्थः= प्रयोजनम् अस्य अस्ति इति अर्थी, गुरोः=उपाध्यायस्य, दक्षिणा=अध्ययनाद्यन्तं देयं द्रव्यं गुरुदक्षिणा, गुरुदक्षिणायाः अर्थी गुरुदक्षिणार्थी 'सन्' प्रपेदे=प्राप।

समा०—विश्वं जयति इति विश्वजित्, तस्मिन् विश्वजिति। कोशानाम् जातम् कोशजातम्, निःशेषम् विश्राणितम् कोशजातम् येन सः निःशेषविश्राणितकोशजातः, तम् निःशेषविश्राणितकोशजातम्। क्षितेः ईशः क्षितीशः, तम् क्षितीशम्। उपात्ताः विद्याः येन सः उपात्तविद्यः। वरतन्तोः शिष्यः वरतन्तुशिष्यः। अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी; गुरोः दक्षिणा गुरुदक्षिणा, गुरुदक्षिणायाः अर्थी गुरुदक्षिणार्थी।

अभि०—यदा रघुर्विश्वजिन्नामके यज्ञे समस्तमपि कोशमर्थिभ्यो ददौ तदा वरतन्तूपाध्यायात्सकला अपि विद्याः अधीत्य तदर्थे दक्षिणाया याचको भूत्वा कौत्सस्त रघुमुपागमत्।

हिन्दी—जब कि राजा रघुने विश्वजित् नामक यज्ञ में अपना सारा खजाना दक्षिणा के रूप में दे डाला तब वरतन्तु महर्षि का शिष्य कौत्स सम्पूर्ण विद्यायें पढ़कर गुरुदक्षिणा देने के लिये द्रव्य प्राप्त करने की इच्छा से रघुके पास याचक बनकर आया ॥१॥

स मृन्मये वीतहिरण्मयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥२॥

सञ्जीविनी—अनर्घशीलोऽमूल्यस्वभावः असाधारणस्वभाव इत्यर्थः। 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इति 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इति चामरशाश्वतौ। यशसा कीर्त्या प्रकाशत इति प्रकाशः, पचाद्यच्। अतिथिषु साधुरातिथेयः 'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' इति ढञ्। स रघुः हिरण्यस्य विकारो हिरण्मयम् 'दाण्डिनायन०' इत्यादिसूत्रेण निपातः। वीतहिरण्मयत्वादपगतसुवर्णपात्रत्वात् यज्ञस्य सर्वस्वदक्षिणाकत्वादिति भावः। मृन्मये मृद्विकारे पात्रे अर्घार्थमिदमर्घ्यम् 'पादार्घाभ्यां च' इति यत्। पूजार्थं द्रव्यं निधाय श्रुतेन शास्त्रेण प्रकाशं प्रसिद्धम्। श्रूयत इति श्रुतं वेदशास्त्रम् 'श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः। अतिथिमभ्यागतम् कौत्सम् 'अतिथिर्ना गृहागते' इत्यमरः। प्रत्युज्जगाम ॥२॥

अन्वयः—अनर्घशीलः, यशसा, प्रकाशः, आतिथेयः, सः, वीतहिरण्मयत्वात् मृन्मये, पात्रे, अर्घ्यम्, निधाय, श्रुतप्रकाशम्, अतिथिम्, प्रत्युज्जगाम।

वाच्य०—अनर्घशीलेन, प्रकाशेन, आतिथेयेन, तेन, श्रुतप्रकाशः, अतिथिः, प्रत्युज्जग्मे।

व्याख्या—न विद्यते अर्घम्=मूल्यम् यस्य तत् अनर्घम्, अनर्घं शीलम्=स्वभावः, यस्य असौ अनर्घशीलः। यशसा=कीर्त्या, प्रकाशः=प्रसिद्धः। अतिथिषु=अभ्यागतेषु, साधुः आतिथेयः। सः=रघुः। हिरण्यस्य=सुवर्णस्य विकारः हिरण्मयम्, वीतम्=गतम् हिरण्मयम् यस्मात् सः वीतहिरण्मयः, वीतहिरण्मयस्य भावः वीतहिरण्मयत्वम्, तस्मात् वीतहिरण्मयत्वात्। मृदः=मृत्तिकायाः, विकारः मृन्मयम्, तस्मिन् मृन्मये। पात्रे=भाजने। अर्घाय=पूजार्थं इदं अर्घ्यम्। निधाय=संस्थाप्य। श्रुतेन=शास्त्रेण, प्रकाशः=प्रसिद्धः, इति श्रुतप्रकाशः, तं श्रुतप्रकाशं। अतिथिं=अभ्यागतं। प्रत्युज्जगाम=प्रत्युद्ययौ।

समा०—न विद्यते अर्घः यस्य तत् अनर्घं, अनर्घम् शीलं यस्य सः अनर्घशीलः। अतिथिषु साधुः आतिथेयः। हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयम्, वीतम् हिरण्मयम् यस्मात् सः वीतहिरण्मयः, वीतहिरण्मयस्य भावः वीतहिरण्मयत्वम्, तस्मात् वीतहिरण्मयत्वात्। मृदः विकारः मृन्मयम्, तस्मिन् मृन्मये। अर्घाय इदम् अर्घ्यम्। श्रुतेन प्रकाशः श्रुतप्रकाशः, तं श्रुतप्रकाशम्।

अभि०—असाधारणस्वभावो यशस्वी तथाऽतिथिसेवाऽभिज्ञो रघुः सुवर्णपात्राभावेन मृत्पात्र एवोपहारसामग्रीं निधाय प्रसिद्धशास्त्रज्ञस्य कौत्सस्य सम्मुखमुपस्थितोऽभवत्।

हिन्दी—असाधारण स्वभाववाले, यशस्वी तथा अतिथि सेवा में निपुण राजा रघु सोने के पात्रों के न रहने से मिट्टी के पात्र में ही अर्घ्य द्रव्य लेकर कौत्स के सम्मुख उपस्थित हुए॥ २॥

तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी।
विशांपतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच॥३॥

सञ्जीविनी—विधिज्ञः शास्त्रज्ञः अकरणे प्रत्यवायभीरुरित्यर्थः। मानधनानामग्रयाय्यग्रेसरः। अपयशोभीरुरित्यर्थः। कृत्यवित्कार्यज्ञः आगमनप्रयोजनमवश्यं प्रष्टव्यमिति कृत्यवित्। विशांपतिर्मनुजेश्वरः 'द्वौ विशौ वैश्यमनुजौ' इत्य-

मरः। विष्टरभाजमासनगतम् उपविष्टमित्यर्थः। 'विष्टरो विटपी दर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्' इत्यमरः। 'वृक्षासनयोर्विष्टरः' इति निपातः। तं तपोधनं विधिवद्विध्यर्हम् यथाशास्त्रमित्यर्थः। 'तदर्हम्' इति वतिप्रत्ययः। अर्चयित्वाऽऽरात्समीपे 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः। कृताञ्जलिः सन्निति वक्ष्यमाणप्रकारेणोवाच ॥३॥

अन्वयः–विधिज्ञः, मानधनाग्रयायी, कृत्यवित्, विशां, पतिः, विष्टरभाजं, तं, तपोधनं, विधिवत्, अर्चयित्वा, आरात्, कृताञ्जलिः 'सन्' इति, उवाच।

वाच्य०—विधिज्ञेन, मानधनाग्रयायिना, कृत्यविदा, विशाम्, पत्या, कृताञ्जलिना, 'सता' ऊचे।

व्याख्या—विधिम्=शास्त्रम्, जानाति=वेत्ति, इति विधिज्ञः। मानः=चित्तसमुन्नतिः एव धनम्=वित्तम् येषां ते मानधनाः, अग्रे=पुरः, याति=गच्छति इति अग्रयायी, मानधनानाम् अग्रयायी इति मानधनाग्रयायी। कृत्यम्=कार्यम् वेत्ति=जानाति, इति कृत्यवित्। विशाम्=मनुजानाम् पतिः=स्वामी। विष्टरम्=आसनम्, भजति=सेवते, इति विष्टरभाक्, तं विष्टरभाजम्, उपविष्टम् इत्यर्थः। तम्=पूर्वोक्तं। तपः=तपश्चर्या, एव, धनम्=वित्तम्, यस्य सः तपोधनः, तं तपोधनम्, कौत्सम्। विधिवत्=यथाशास्त्रम्। अर्चयित्वा=सम्पूज्य। आरात्=समीपे। कृतः=विहितः, बद्ध इति यावत्, अञ्जलिः=हस्तसंपुटः, येन सः कृताञ्जलिः, 'सन्'। इति=इत्थम्, वक्ष्यमाणप्रकारेण। उवाच=कथयामास ॥

समा०—विधम् जानातीति विधिज्ञः। मानः एव धनं येषां ते मानधनाः, अग्रे याति इति अग्रयायी, मानधनानाम् अग्रयायी मानधनाग्रयायी। कृत्यं वेत्ति इति कृत्यवित्। विष्टरं भजति इति विष्टरभाक्, तं विष्टरभाजम्। तपः एव धनम् यस्य सः तपोधनः, तं तपोधनम्। कृतः अञ्जलिः येन सः कृताञ्जलिः।

अभि०—शास्त्रविधिज्ञो रघुस्तं तपस्विनं कौत्सं शास्त्रोक्तविधिना संपूज्यासन उपवेश्य स्वयं संयोजितकरयुगलः सन्नुवाच।

हिन्दी—शास्त्रविधि को जाननेवाले मनस्वी रघुने तपस्वी कौत्स की शास्त्रोक्त-विधि से पूजा की, और आसन पर बैठाकर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले ॥३॥

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥ ४ ॥

सञ्जीविनी—हे कुशाग्रबुद्धे सूक्ष्मबुद्धे 'कुशाग्रीयमतिः प्रोक्तः सूक्ष्मदर्शी च यः पुमान्' इति हलायुधः। मन्त्रकृतां मन्त्रद्रष्टृणाम् 'सुकर्मपापमन्त्र०' इत्यादिना क्विप्। ऋषीणामग्रणीः श्रेष्ठस्ते तव गुरुः कुशल्यपि क्षेमवान्किम्। अपिः प्रश्ने। 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासंभावनास्वपि' इत्यमरः। यतो यस्माद् गुरोः सकाशात्त्वयाऽशेषं ज्ञानं लोकेनोष्णरश्मेः सूर्याच्चैतन्यं प्रबोध इव आप्तं स्वीकृतम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—कुशाग्रबुद्धे ! मन्त्रकृतां, ऋषीणां, अग्रणीः, ते, गुरुः, कुशली, अपि, यतः, त्वया, अशेषम्, ज्ञानम्, लोकेन उष्णरश्मेः, चैतन्यम् इव, आप्तम्।

वाच्य०—ऋषीणां अग्रण्या, ते गुरुणा, कुशलिना अपि, 'भूयते'। यतः त्वं ज्ञानं लोकः चैतन्यं, इव आप्तवान्।

व्याख्या—कुशस्य=दर्भस्य, अग्रम्=अग्रभागः इति कुशाग्रम्, कुशाग्रम् इव=यथा (तीक्ष्णा) बुद्धिः=मतिः यस्य सः कुशाग्रबुद्धिः, तत्सम्बुद्धौ हे कुशाग्रबुद्धे ! मन्त्रान्कृतवन्तः इति मन्त्रकृतः, तेषाम् मन्त्रकृताम्। ऋषीणाम्=मुनीनाम्। अग्रम्=पुरः, नयति=प्रापयति, इति अग्रणीः। ते=तव कौत्सस्य। गुरुः=उपाध्यायः वरतन्तुः। कुशलम्=क्षेमम् अस्य अस्ति इति कुशली। अपिरिति प्रश्नेऽव्ययम्। यतः=यस्मात् गुरोः सकाशादित्यर्थः। त्वया=कौत्सेन अशेषम्=समग्रम्। ज्ञानम्=अवबोधः, लोकेन=जनेन। उष्णाः=तप्ताः, रश्मयः=किरणाः यस्य सः उष्णरश्मिः, सूर्य इत्यर्थः, तस्मात् उष्णरश्मेः। चैतन्यम्=प्रबोधः। इव=यथा। आप्तं=गृहीतम्।

समा०—कुशस्य अग्रं कुशाग्रम्, कुशाग्रम् इव बुद्धिः यस्य सः कुशाग्रबुद्धिः, तत्सम्बुद्धौ हे कुशाग्रबुद्धे ! मन्त्रान्कृतवन्त इति मन्त्रकृतः, तेषाम् मन्त्रकृताम्। अग्रम् नयति इति अग्रणीः। कुशलम् अस्य अस्ति इति कुशली। उष्णाः रश्मयः यस्य स उष्णरश्मिः, तस्मात् उष्णरश्मेः।

अभि०—हे तीक्ष्णमते ! कौत्स ! महर्षिवर्यस्ते गुरुर्वरतन्तुः कुशलेन सह वर्तते किमु ? यस्मात्त्वया सकलं ज्ञानं तथैव लब्धं यथा लोको रवेरालोकेन चैतन्यं गृह्णाति।

हिन्दी—हे तीक्ष्णबुद्धे ! कौत्स, तुम्हारे गुरु ऋषिश्रेष्ठ वरतन्तुजी कुशल पूर्वक तो हैं ? जिनसे तुमने सम्पूर्ण ज्ञान इस प्रकार प्राप्त किया है जिस प्रकार सूर्य से मनुष्य प्रबोध (जागरण) प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

कायेन वाचा मनसाऽपि शश्वद्यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि ।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥५॥

सञ्जीविनी—कायेनोपवासादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिना वाचा वेदपाठेन मनसा गायत्रीजपादिना कायेन वाचा मनसापि करणेन वासवस्येन्द्रस्य धैर्यं लुम्पतीति वासवधैर्यलोपि स्वपदापहारशङ्काजनकमित्यर्थः । यत्तपः शश्वदसकृत् 'मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः' इत्यमरः । संभृत संचितं महर्षेर्वरतन्तोस्त्रिविधं वाङ्मनःकायजं तत्तपोऽन्तरायैर्विघ्नैरिन्द्रप्रेरिताप्सरःशापैर्व्ययं नाशं नापाद्यते कच्चित् न नीयते किम् ? 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः ॥ ५ ॥

अन्वयः—कायेन, वाचा, मनसा, अपि वासवधैर्यलोपि, यत्, शश्वत् सम्भृतम्, महर्षेः, त्रिविधम्, तत् तपः, अन्तरायैः, व्ययम्, न आपाद्यते कच्चित् ?

वाच्य०—वासवधैर्यलोपिना येन सम्भृतेन, 'भूयते' अन्तरायाः व्ययं न आपादयन्ति कच्चित् ?

व्याख्या—कायेन = शरीरेण, चान्द्रायणादिव्रतेनेत्यर्थः । वाचा = वाण्या, वेदपाठेनेत्यर्थः । मनसा = हृदयेन, ध्यानादिनेत्यर्थः । अपिरिति समुच्चयेऽव्ययम् । वासवस्य=इन्द्रस्य, धैर्यं=धृतिः इति वासवधैर्यं, वासवधैर्यं लुम्पति=विनाशयति इति वासवधैर्यलोपि । यत्=तपः । शश्वत्=सर्वदा । सम्भृतम्=सञ्चितम् । महान्= श्रेष्ठश्चासौ, ऋषिः=मुनिः इति महर्षिः, तस्य महर्षेः । तिस्रो विधः=प्रकाराः यस्य तत् त्रिविधम्, मनोवाक्कायजमित्यर्थः । तत् तपः = तपश्चरणं । अन्तरायैः = विघ्नैः । व्ययम्=नाशम् । न = नैव । आपाद्यते = प्राप्यते । कच्चित्=किम् ?

समा०—वासवस्य धैर्यं वासवधैर्यं, वासवधैर्यं लुम्पति इति वासवधैर्यलोपि । महान् च असौ ऋषिः महर्षिः, तस्य महर्षेः । तिस्रो विधाः यस्य तत् त्रिविधम् ।

आभि०—यच्च गुरुर्मनसा, वाण्या तथा शरीरेणेन्द्रस्य धैर्यापहारकं तपोऽर्जयति तद्विघ्नैः क्षीयते न किमु ?

हिन्दी—तुम्हारे गुरुजी ने मन, वाणी तथा शरीर से इन्द्र के धैर्य को भग्न करनेवाला जो तप का सञ्चय किया है, कहीं उसका इन्द्र द्वारा भेजी अप्सराओं से किये विघ्नों से क्षय तो नहीं होता है ? ॥५॥

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ।
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः, श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम् ॥६॥

सञ्जीविनी—आधारबन्धप्रमुखैरालवालनिर्माणादिभिः प्रयत्नैरुपायैः 'आधार आलवालेऽम्बुबन्धेऽधिकरणेऽपि च' इति विश्वः । सुतेभ्यो निर्गतो विशेषोऽतिशयो यस्मिन्कर्मणि तत्तथा संवर्धितानां श्रमच्छिदां वः आश्रमपादपानां वाय्वादिः आदिशब्दाद्दावानलादिः उपप्लवो बाधको न कच्चिन्नास्ति किम् ॥६॥

अन्वयः—आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः, सुतनिर्विशेषम् संवर्धितानां, श्रमच्छिदाम् , वः, आश्रमपादपानाम् , वाय्वादिः, उपप्लवः, न, कच्चित् ?

वाच्य०—वाय्वादिना, उपप्लवेन, न, 'भूयते' कच्चित् ?

व्याख्या—आधारस्य = आलवालस्य = बन्धः = बन्धनम् , आधारबन्धः, आधारबन्ध एव प्रमुखः=प्रधानं येषां ते आधारबन्धप्रमुखाः, तैः आधारबन्धप्रमुखैः । प्रयत्नैः=उपायैः । सुतात्=पुत्रात् , निर्विशेषम्=वैशिष्ट्यरहितम् , समानमित्यर्थः । संवर्धितानाम्=परिवर्धितानां श्रमं=खेदं, छिन्दन्ति=नाशयन्ति, इति श्रमच्छिदः, तेषां श्रमच्छिदाम् । आश्रमस्य=मुन्यावासस्य, पादपाः=वृक्षाः, इति आश्रमपादपाः, तेषां आश्रमपादपानां वायुः=पवनः, आदिः=प्रथमः यस्य सः वाय्वादिः । उपप्लवः=उत्पातः । न=नहि कच्चित्=किम् ?

समा०—आधारस्य बन्धः आधारबन्धः, आधारबन्धः एव प्रमुखः येषाम् ते आधारबन्धप्रमुखाः, तैः आधारबन्धप्रमुखैः । निर्गतः विशेषः यस्मिन्कर्मणि तत् निर्विशेषम् , सुतात् निर्विशेषं सुतनिर्विशेषम् । श्रमं छिन्दन्ति इति श्रमच्छिदः, तेषाम् श्रमच्छिदाम् । आश्रमस्य पादपाः इति आश्रमपादपाः, तेषाम् आश्रमपादपानाम् । वायुः आदि यस्यः सः वाय्वादिः ।

अभि०—युष्माभिराश्रमवृक्षाणामालवालनिर्माणादिरूपेण पुत्रवत्पालनं क्रियते । कश्चित्तेषामेवाश्रमतरूणां कृते वात्यादिप्रकोपस्तु न जायते ?

हिन्दी—जिन आश्रम के वृक्षों का आलवाल अर्थात् थावला (क्यारी)

बनाने आदि से पुत्र की तरह पालन किया जाता है और जिनसे छाया मिलती है उनके ऊपर आँधी आदि उपद्रवों का प्रकोप तो नहीं होता ? ॥ ६ ॥

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु ।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ॥७॥

सञ्जीविनी—क्रियानिमित्तेष्वप्यनुष्ठानसाधनेष्वपि कुशेषु मुनिभिर्वत्सलत्वान्मृगस्नेहादभग्नकामाऽप्रतिहतेच्छा तेषां मुनीनामङ्का एव शय्यास्तासु च्युतानि नाभिनालानि यस्याः सा तथोक्ता मृगीणां प्रसूतिः संततिरनघाऽव्यसना कच्चित् अनपायिनी किमित्यर्थः । 'दुःखैनोव्यसनेष्वघम्' इति यादवः । ते हि व्यालभयाद्दशरात्रमङ्क एव धारयन्ति ॥ ७ ॥

अन्वयः—क्रियानिमित्तेषु, अपि, कुशेषु, मुनिभिः, वत्सलत्वात्, अभग्नकामा, तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला, मृगीणाम्, प्रसूतिः, अनघा, कच्चित् ?

वाच्य०—अभग्नकामया, तदङ्कशय्याच्युतनाभिनालया, प्रसूत्या, अनघया 'भूयते' कच्चित् ?

व्याख्या—क्रियायाः = अनुष्ठानस्य, निमित्तानि = साधनानि इति क्रियानिमित्तानि, तेषु क्रियानिमित्तेषु । अपि, कुशेषु=दर्भेषु । मुनिभिः=ऋषिभिः । वत्सलस्य भावः वत्सलत्वम्, तस्मात् वत्सलत्वात्=मृगस्नेहात् । न=नहि भग्नः=नष्टः, कामः=अभिलाषः, यस्याः सा अभग्नकामा । तेषाम्=मुनीनाम्, अङ्काः=क्रोडस्थानानि इति तदङ्काः, तदङ्काः एव शय्याः=शयनस्थल्यः, इति तदङ्कशय्याः, तदङ्कशय्यासु च्युतानि नाभिनालानि=तुन्दिकानालानि यस्याः सा, तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला । मृगीणाम् = हरिणीनाम्, प्रसूतिः = सन्ततिः, न=नहि विद्यन्ते अघानि=व्यसनानि यस्याः सा अनघा, दुःखरहितेत्यर्थः । कच्चित्-इति कामप्रवेदनेऽव्ययम् ।

समा०—क्रियायाः निमित्तानि क्रियानिमित्तानि, तेषु क्रियानिमित्तेषु । वत्सलस्य भावः वत्सलत्वम्, तस्मात् वत्सलत्वात् । भग्नः कामः यस्याः सा भग्नकामा, न भग्नकामा अभग्नकामा । तेषाम् अङ्काः तदङ्काः, तदङ्काः एव शय्याः तदङ्कशय्याः, तदङ्कशय्यासु च्युतानि तदङ्कशय्याच्युतानि, नाभेः नालानि नाभिनालानि,

तदङ्कशय्याच्युतानि नाभिनालानि यस्याः सा तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला। न विद्यन्ते अघानि यस्याः सा अनघा।

अभि०—येषां मृगपोतानां नाभिनालानि मुन्यङ्केषु एव पतन्ति तथाऽनुष्ठानसाधनानपि कुशाङ्कुरान् दूषितुं प्रवृत्तानां वत्सलतया येषां वारणं मुनिभिः न क्रियते ते मृगपोताः कुशलवन्तः किमु ?

हिन्दी—और वे हरिणों के बच्चे तो कुशल से हैं, जिन्हें ऋषि लोग गोद में बैठाकर प्रेम से खिलाते हैं, जिनके नाभिनाल मुनियोंकी गोद में गिरते हैं और जिनको ऋषिगण पुत्रस्नेह से यज्ञक्रिया के लिए एकत्र किये कुशा पर भी बैठने आदि से नहीं रोकते हैं॥ ७॥

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम्।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्॥ ८॥

सञ्जीविनी—यैस्तीर्थजलैर्नियमाभिषेको नित्यस्नानादिर्निर्वर्त्यते निष्पाद्यते येभ्यो जलेभ्यः उद्धृत्येति शेषः, पितॄणामग्निष्वात्तादीनां निवापाञ्जलयस्तर्पणाञ्जलयः 'पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः। निर्वर्त्यन्ते। उञ्छानां प्रकीर्णोद्धृतधान्यानां षष्ठैः षष्ठभागैः पालकत्वाद्राजग्राह्यैरङ्कितानि सैकतानि पुलिनानि येषां तानि तथोक्तानि वो युष्माकं तानि तीर्थजलानि शिवानि भद्राणि कच्चित् अनुपप्लवानि किमित्यर्थः। 'उञ्छो धान्यांशकादानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्', इति यादवः। 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' इति षष्ठशब्दाद्भागार्थेऽन्प्रत्ययः। अत एवापूरणार्थत्वात् 'पूरणगुण०' इत्यादिना न षष्ठीसमासप्रतिषेधः। सिकता येषु सन्ति सैकतानि 'सिकताशर्कराभ्यां च' इत्यणप्रत्ययः॥ ८॥

अन्वयः—यैः, नियमाभिषेकः, निर्वर्त्यते, येभ्यः, पितॄणाम्, निवापाञ्जलयः उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि, वः, तानि, तीर्थजलानि, शिवानि, कच्चित् ?

वाच्य०—यानि, नियमाभिषेकम्, निर्वर्तयन्ति, निवापाञ्जलीन्, 'निर्वर्तयन्ति' उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतैः, वः, तैः, तीर्थजलैः, शिवैः, 'भूयते' कच्चित् ?

व्याख्या—यैः=जलैः। नियमेन=नियमपूर्वकं प्रत्यहमित्यर्थः, अभिषेकः=स्नानम्, इति नियमाभिषेकः। निर्वर्त्यते=संपाद्यते। येभ्यः=जलेभ्यः। पितॄणाम्=अग्निष्वात्तादीनाम्। निवापाञ्जलयः=पितृतर्पणानि निर्वर्त्यन्ते। उञ्छानाम्=कणशो गृहीतानाम् धान्यानाम्, षष्ठाः=षष्ठांशाः इति उञ्छषष्ठाः, उञ्छषष्ठैः

अङ्कितानि=चिह्नितानि, सैकतानि=वालुकातटानि येषु तानि उञ्छषष्ठाङ्कित सैकतानि। वः=युष्माकम्। तानि=प्रसिद्धानि। तीर्थस्य=जलावतारस्य जलानि=सलिलानि। शिवानि=भद्राणि कच्चित्=किम्?

समा०—नियमेन अभिषेकः नियमाभिषेकः। निवापे अञ्जलयः इति निवापाञ्जलयः। उञ्छानाम् षष्ठाः उञ्छषष्ठाः, उञ्छषष्ठैः अङ्कितानि सैकतानि येषु तानि, उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि। तीर्थस्य जलानि तीर्थजलानि।

अभि०—यानि युष्माकं व्रतस्नानादिकं सम्पन्नं कुर्वन्ति, येभ्यश्च यूयं पितृतर्पणक्रियां कुरुथ, येषां च वालुकावन्ति तटानि युष्माकं कणशो गहीतानां धान्यानां राजग्राह्यैः षष्ठांशैश्चिह्नितानि, तानि तीर्थजलानि भद्राणि किम्?

हिन्दी—जिनसे आप स्नान सन्ध्यावन्दन तथा तर्पण करते हैं एवं जिनके रेतीले किनारे पर एक-एक कण उठाकर चुने हुए अन्न का राज-भाग रूपी षष्ठांश जानकर छोड़ते हैं, वे आपके तीर्थजल तो उपद्रवों से रहित हैं? ॥ ८ ॥

नीवारपाकादि कडङ्गरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित्।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ॥ ९ ॥

सञ्जीविनी—कालेषु योग्यकालेषूपपन्नानामागतानामतिथीनां कल्प्या भागा यस्य तत्तथोक्तम्, वने भवं वन्यम् शरीरस्थितेर्जीवितस्य साधनं वो युष्माकम् पच्यत इति पाकः फलम् धान्यमिति यावत्, नीवारपाकादि आदिशब्दाच्छ्यामाकादिधान्यसंग्रहः, जनपदेभ्य आगतैर्जानपदैः 'तत आगतः' इत्यण्। कडङ्गरीयैः कडङ्गरं बुसमर्हन्तीति कडङ्गरीयाः 'कडङ्गरो बुसं क्लीबे धान्यत्वचि तुषः पुमान्' इत्यमरः। 'कडङ्गरदक्षिणाच्छ च' इति छप्रत्ययः। तैर्गोमहिषादिभिर्नामृश्यते कच्चित् न भक्ष्यते किमित्यर्थः ॥ ९ ॥

अन्वयः—कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागम्, वन्यम्, शरीरस्थितिसाधनम्, वः, नीवारपाकादि, जानपदैः, कडङ्गरीयैः न, आमृश्यते, कच्चित्?

वाच्य०—जानपदाः, कडङ्गरीयाः, न, आमृशन्ति, कच्चित्?

व्याख्या—कालेषु=योग्यसमयेषु, उपपन्नाः=प्राप्ताः इति कालोपपन्नाः, कालोपपन्नाः च ते अतिथयः=अभ्यागताः इति कालोपपन्नातिथयः, कालोपपन्नातिथीनाम् कल्प्याः=कल्पनीयाः इति कालोपपन्नातिथिकल्प्याः, कालोपपन्नातिथिकल्प्याः भागाः=अंशाः यस्य तत् कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागम्, वने=अरण्ये,

भवं वन्यम्। शरीरस्य=देहस्य, स्थितिः=धारणम्, इति शरीरस्थितिः, शरीरस्थितेः साधनम् = उपायभूतम् इति शरीरस्थितिसाधनम्। वः=युष्माकम्। पच्यते = पक्कं भवति, इति पाकः फलमित्यर्थः, नीवाराणाम् = धान्यविशेषाणाम्, पाकः इति नीवारपाकः, नीवारपाकः आदिः यस्य तत् नीवारपाकादि जनपदस्येमे जानपदाः=नागराः, तैः जानपदैः। कडङ्गरं = बुसम् अर्हन्ति इति कडङ्गरीयाः=गोमहिषादय इत्यर्थः, तैः कडङ्गरीयैः न=नहि। आमृश्यते=भक्ष्यते, कच्चित्=किम्?

समासः—कालेषु उपपन्नाः कालोपपन्नाः, कालोपपन्नाः च ते अतिथयः इति कालोपपन्नातिथयः, कालोपपन्नातिथीनां कल्प्या भागाः यस्य तत् कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागम्। वने भवं वन्यम्। शरीरस्य स्थितिः शरीरस्थितिः, शरीरस्थितेः साधनं शरीरस्थितिसाधनम्। नीवाराणां पाकः नीवारपाकः, नीवारपाकः आदिः यस्य तत् नीवारपाकादि। जनपदस्येमे जानपदाः, तैः जानपदैः। कडङ्गरम् अर्हन्ति इति कडङ्गरीयाः, तैः कडङ्गरीयैः।

अभि०—बलिवैश्वदेवकर्मान्ते योग्यसमये समागतानामतिथीनामपि जीवनोपायभूतं यद्वनोद्भव नीवारश्यामाकादिधान्यं युष्माकं भक्ष्य तन्नगरादागतगोमहिषादिभिस्तु न भक्ष्यते किम्?

हिन्दी—बलिवैश्वदेव कर्म के अनन्तर उचित समय पर आनेवाले, अतिथियों के भाग भी जिनसे निकाले जाते हैं, ऐसे आप लोगों के जीवन के आधार, वन के नीवार आदि धान्य को नगर से आये गाय, भैंस आदि पशु तो नहीं खा जाते हैं? ॥ ९ ॥

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय।
काले ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ॥१०॥

सञ्जीविनी—किञ्च त्वं प्रसन्नेन सता महर्षिणा सम्यग्विनीय शिक्षयित्वा विद्यामुपदिश्येत्यर्थः। गृहाय गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुं 'क्रियार्थोपपद०' इत्यादिना चतुर्थी। अनुमतोऽप्यनुज्ञातः किम्, हि यस्मात्ते तव सर्वेषामाश्रमाणां ब्रह्मचर्यवानप्रस्थयतीनामुपकारे क्षमं शक्तम् 'क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः। द्वितीयमाश्रमं गार्हस्थ्यं संक्रमितुं प्राप्तुमयं कालः, विद्याग्रहणानन्तर्यात्तस्येति भावः। 'कालसमयवेलासु तुमुन्' इति तुमुन्। सर्वोपकारक्षममित्यत्र मनुः—"य...

मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। वर्तन्ते गृहिणस्तद्वदाश्रित्येतर आश्रमाः इति ॥१०॥

अन्वयः—त्वम्, प्रसन्नेन, 'सता' महर्षिणा, सम्यग्, विनीय, गृहाय अनुमतः, अपि? हि, ते, सर्वोपकारक्षमं, द्वितीयम्, आश्रमम्, संक्रमितुम्, अयम् कालः 'अस्ति'।

वाच्य०—त्वाम् प्रसन्नः 'सन्' महर्षिः गृहाय, अनुमतवान्, अनेन कालेन, भूयते।

व्याख्या—त्वम्=कौत्सः। प्रसन्नेन=तुष्टेन, 'सता'। महर्षिणा=महामुनिना सम्यक्=यथावत्। विनीय=शिक्षयित्वा। गृहाय=गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुम्। अनुमतः= संमतः, अपि=किम्? हि=यतः ते=तव, कौत्सस्य। सर्वेषाम्=सकलानाम्, आश्रमाणामित्यर्थः, उपकारः=उपकृतिः, इति सर्वोपकारः, सर्वोपकारे क्षमः=समर्थः इति सर्वोपकारक्षमः। तं सर्वोपकारक्षमम्। द्वितीयम्=प्रथमाश्रमादग्रे वर्तमानम्। आश्रमम्=गृहस्थाश्रमम्। संक्रमितुम्=प्रवेष्टुम्। अयम्=एषः, कालः=समयः, 'अस्ति'।

समा०—सर्वेषामुपकारः सर्वोपकारः, सर्वोपकारे क्षमः सर्वोपकारक्षमः, तम् सर्वोपकारक्षमम्। महांश्चासौ ऋषिश्च महर्षिः, तेन।

अभि०—त्वद्गुरुणा महर्षिणा वरतन्तुना त्वं यथाविधि शिक्षयित्वा किं गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुमादिष्टः? यत इदानीं ते वयः सर्वेषामप्याश्रमाणामुपकारकं गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुं योग्यमस्ति।

हिन्दी—क्या तुम्हारे गुरु महर्षि वरतन्तुजी ने तुम्हें विधिपूर्वक शिक्षा में निष्णात करके, घर जाने की आज्ञा दे दी है? क्योंकि यह तुम्हारी अवस्था, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन चारों आश्रमों के उपकारक गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के योग्य है ॥१०॥

कुशलप्रश्नं विधायागमनप्रयोजनप्रश्नं चिकीर्षुराह—

तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे।
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम् ॥११॥

सञ्जीविनी—अर्हतः पूज्यस्य प्रशस्यस्य 'अर्हः प्रशंसायाम्' इति शतृप्रत्ययः। तवाभिगमेनागमनमात्रेण मे मनो न तृप्तं न तुष्टम्। किंतु नियोगक्रिययाऽऽज्ञाकरणेनोत्सुकं सोत्कण्ठम् 'इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः' इत्यमरः। 'प्रसितोत्सुकाभ्यां

तृतीया च' इति सप्तम्यर्थे तृतीया। शासितुर्गुरोराज्ञयाऽप्यात्मना स्वतो वा 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्', इति तृतीया। मां संभावयितुं वनात्प्राप्तोऽसि, गुर्वर्थं स्वार्थं वाऽऽगमनमित्यर्थः ॥११॥

अन्वयः—अर्हतः, तव, अभिगमेन, मे, मनः, न, तृप्तम्, किन्तु, नियोगक्रियया, उत्सुकम्, शासितुः, आज्ञया, अपि आत्मना, वा, माम्, सम्भावयितुम्, वनात्, प्राप्तः, असि ?

वाच्य०—मनसा, न, तृप्तेन 'भूयते' उत्सुकेन, वनात्, प्राप्तेन, 'भूयते'।

व्याख्या—अर्हतः=पूज्यस्य। तव=कौत्सस्य। अभिगमेन=आगमनेन। मे=मम रघोः। मनः=चित्तम्। न=नैव। तृप्तम्=सन्तुष्टम्। 'किन्तु' नियोगस्य=आज्ञायाः, क्रिया=करणम् नियोगक्रिया, तया नियोगक्रियया। उत्सुकम्=उत्कण्ठितम्। शासितुः=शिक्षकस्य। आज्ञया=आदेशेन। अपि=किमु। आत्मना=स्वतः। वा=अथवा। माम्=रघुम्। सम्भावयितुम्=सत्कर्तुम्। वनात्=अरण्यात्; प्राप्तः=आगतः, असि=भवसि ?

समा०—नियोगस्य क्रिया नियोगक्रिया, तया नियोगक्रियया।

अभि०—हे कौत्स! यदेतत्तव शुभागमनमिह जातमेतेन न मे मनसि तृप्तिः, अपि तु तवाज्ञाश्रवणविषये महत्युत्कण्ठा वर्तते, तस्माद् ब्रूहि किं त्वमिह गुरोरादेशात्प्राप्तोऽथवा स्वतः ?

हिन्दी—हे कौत्स! पूज्य तुम्हारे आने मात्र से मेरा मन तृप्त नहीं हो सका है, किन्तु तुम्हारी आज्ञा सुनने की बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। अतः कहो, तुम्हारा आना गुरुजी के कार्य से हुआ, अथवा अपने ही कार्य से ? ॥११॥

इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥१२॥

सञ्जीविनी—अर्घ्यपात्रेण मृन्मयेनानुमितो व्ययः सर्वस्वत्यागो यस्य तस्य रघोरित्युक्तप्रकारामुदारामौदार्ययुक्तामपि गां वाचम् 'मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे' इत्येवंरूपाम्। 'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले। लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः' इत्यमरः। निशम्य श्रुत्वा वरतन्तुशिष्यः कौत्सः स्वार्थोपपत्तिं स्वकार्यसिद्धिं प्रति दुर्बलाशः सन्मृन्मयपात्रदर्शनाच्छिथिलमनोरथः सन्तं रघुमिति वक्ष्यमाणप्रकारेणावोचत् ॥१२॥

अन्वयः—अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य, रघोः,इति,उदाराम्,अपि,गाम्,निशम्य वरतन्तुशिष्यः, स्वार्थोपपत्तिम्, प्रति, दुर्बलाशः, 'सन्' तम्, इति, अवोचत्।

वाच्य०—वरतन्तुशिष्येण, दुर्बलाशेन, सता, सः, इति औच्यत।

व्याख्या—अर्घार्थं द्रव्यम् अर्घ्यम्=अर्घाय दीयमानं जलादिकम्, अर्घ्यस्य पात्रम्=भाजनम् इति अर्घ्यपात्रम्, अर्घ्यपात्रेण अनुमितः=निश्चितः इति अर्घ्यपात्रानुमितः, अर्घ्यपात्रानुमितः व्ययः=धनापगमः यस्य सः अर्घ्यपात्रानुमितव्ययः, तस्य अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य। मृन्मयार्घ्यपात्रदर्शनेन निर्णीतसकलकोषदानस्य। रघोः=दिलीपसूनोः। इति=एवंभूताम्, उदाराम्=औदार्यगुणयुक्ताम् अपि। गाम्=वाणीम्। निशम्य=श्रुत्वा। वरतन्तोः=तन्नामकमहर्षेः शिष्यः=अन्तेवासी इति वरतन्तुशिष्यः। स्वस्य=निजस्य, अर्थः=प्रयोजनम् स्वार्थः, स्वार्थस्य उपपत्तिः=सिद्धिः इति स्वार्थोपपत्तिः, ताम् स्वार्थोपपत्तिम् प्रति=लक्ष्यीकृत्य। दुर्बला=क्षीणा, आशा=मनोरथः यस्य सः दुर्बलाशः 'सन्' तम्=रघुम्। इति=वक्ष्यमाणप्रकारेण। अवोचत्=उवाच।

समा०—अर्घार्थम् अर्घ्यम्, अर्घ्यस्य पात्रम् अर्घ्यपात्रम्; अर्घ्यपात्रेण अनुमितः अर्घ्यपात्रानुमितः, अर्घ्यपात्रानुमितः व्ययः यस्य सः अर्घ्यपात्रानुमितव्ययः, तस्य अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य। वरतन्तोः शिष्यः वरतन्तुशिष्यः। स्वस्य अर्थः स्वार्थः स्वार्थस्य उपपत्तिः स्वार्थोपपत्तिः। तां स्वार्थोपपत्तिम्। दुर्बला आशा यस्य सः दुर्बलाशः।

अभि०—वरतन्तुशिष्येण कौत्सेन मृन्मयमर्घ्यपात्रमवलोक्य निर्णीतं यद्रघुणा विश्वजिद्यज्ञे सकलोऽपि राजकोषोऽर्थिसात्कृत इति स्वकार्यसिद्धिं प्रति शिथिलाशो भूत्वा स रघुमुवाच।

हिन्दी—वरतन्तु ऋषि के शिष्य कौत्स ने मिट्टी का अर्घ्य-पात्र देखकर अनुमान लगा लिया कि राजा ने सम्पूर्ण कोष विश्वजित् यज्ञ में दान कर दिया है; इस कारण उसकी अपनी कार्यसिद्धि के विषय में आशा शिथिल पड़ गयी, और उसने रघु से इस प्रकार कहा ॥१२॥

सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥१३॥

सञ्जीविनी—हे राजन्! त्वं सर्वत्र नोऽस्माकं वार्तं स्वास्थ्यमवेहि जानीहि, 'वार्तं फल्गुन्यरोगे च' इत्यमरः। 'वार्तं पाटवमारोग्यं भव्यं स्वास्थ्यमनामयम्'

इति यादवः । न चैतदाश्चर्यमित्याह—नाथ इति । त्वयि नाथ ईश्वरे सति प्रजानामशुभं दुःखं कुतः । तथाहि अर्थान्तरम् न्यस्यति—सूर्ये इत्यादिना । सूर्ये तपति प्रकाशमाने सति तमिस्रा तमस्ततिः । 'तमिस्रं तिमिरे रोगे तमिस्रा तु तमस्ततौ । कृष्णपक्षनिशायां च' इति विश्वः । 'तमिस्रम्' इति पाठे तमिस्रं तिमिरम् 'तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः । लोकस्य जनस्य 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः । दृष्टेरावरणाय कथं कल्पेत दृष्टिमात्ररितुं नालमित्यर्थः । क्लृपेरलमर्थत्वात्तद्योगे 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च' इत्यनेन चतुर्थी । 'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्' इति भगवान्भाष्यकारः । कल्पेत संपद्येतेत्यर्थः । क्लृपि संपद्यमाने चतुर्थीति वक्तव्यात् ॥१३॥

अन्वयः—राजन्, 'त्वम्' सर्वत्र, नः वार्तम्, अवेहि, त्वयि, नाथे, 'सति' प्रजानाम्, अशुभम्, कुतः, सूर्ये, तपति, 'सति', तमिस्रा, लोकस्य, दृष्टेः, आवरणाय, कथम्, कल्पेत ?

वाच्य०—'त्वया' वार्तम् अवेयताम्, अशुभेन, 'भूयते' तमिस्रया कल्प्येत ?

व्याख्या—हे राजन् = नृप । हे 'त्वम्' सर्वत्र=सर्वस्मिन्प्रष्टव्यविषये । नः= अस्माकम् । वार्तम्=कुशलम्, अवेहि=जानीहि । त्वयि=रघौ, नाथे=स्वामिनि, 'सति' । प्रजानाम्=जनानाम् । न शुभम्=कल्याणम् इति अशुभम् । कुतः= कथं स्यात् । 'यतः' सूर्ये=सवितरि, तपति=तापं जनयति इति तपन्, तस्मिन् तपति=प्रकाशमाने 'सति' । तमिस्रा=कृष्णपक्षीया रात्रिः 'तमिस्रा तामसी रात्रिः' इत्यमरः । लोकस्य=जनस्य । दृष्टेः=नेत्रव्यापारस्य, आवरणाय=अवरोधाय । कथम्=केन प्रकारेण । कल्पेत=सम्पद्येत ।

समा०—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, तासाम् प्रजानाम् । न शुभम् अशुभम् । सरति अकाशे इति सूर्यः, तस्मिन् सूर्ये । आ समन्ताद् वरणं, तस्मै आवरणाय ।

अभि०—हे राजँस्त्वमस्माकं सर्वथा कुशलं विद्धि, त्वादृशे प्रजापालके कुतो नु लोकस्याकुशलं, यतो दिननाथे प्रकाशमानेऽन्धकारपरम्परायाश्चर्चाऽपि किं भूयते ?

हिन्दी—हे राजन् ! आप हमारा सब प्रकार से कुशल समझें । आप सरीखे राजा के होने पर प्रजा का अकुशल कैसे हो सकता है ? भला, कहीं सूर्य के

प्रकाशमान रहते अन्धकार-समूह लोगों की दृष्टि को ढाँकने में समर्थ हो सकत है ?॥ १३ ॥

'तवार्हतः'—इत्यादिनोक्तं यत्तन्न चित्रमित्याह—

भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग तयातिशेषे ।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः ॥१४॥

सञ्जीविनी—प्रतीक्ष्येषु पूज्येषु 'पूज्यः प्रतीक्ष्यः' इत्यमरः । भक्तिरनुराग विशेषस्ते तव कुलोचिता कुलाभ्यस्ता 'अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम्' इति यादवः हे महाभाग सार्वभौम ! तया भक्त्या पूर्वानतिशेषेऽतिवर्तसे । किन्तु सर्व वार्ते चेत्तर्हि कथं खेदखिन्न इव दृश्यसेऽत आह—व्यतीतेति । अहं व्यतीत कालोऽतिक्रान्तकालः सन्नर्थिभावात्त्वामभ्युपेत इति मे मम विषादः ॥१४॥

अन्वयः—प्रतीक्ष्येषु, भक्तिः, ते, कुलोचिता, महाभाग, तया पूर्वान् अति शेषे, तु, अहम् व्यतीतकालः 'सन्' अर्थिभावात् त्वाम्, अभ्युपेतः, इति, मे विषादः, 'अस्ति' ।

वाच्य०—भक्त्या, कुलोचितया, 'भूयते' पूर्वे, त्वया, अतिशय्यन्ते, मया व्यतीतकालेन, 'सता', अभ्युपेतेन 'भूयते' इति विषादेन 'भूयते' ।

व्याख्या—प्रतीक्ष्येषु = पूज्येषु । भक्तिः = अनुरागः । ते=तव रघोः कुलस्य = वंशस्य, उचिता = योग्या, इति कुलोचिता । हे महाभाग = सार्व भौम । तया = भक्त्या । पूर्वान् = पूर्वजान् । अतिशेषे = अतिक्रम्य वर्तसे तु = किन्तु । अहम्=कौत्सः । व्यतीतः = अतिक्रान्तः, कालः = समयः यस्य सः व्यतीतकालः, 'सन्' । अर्थः = प्रयोजनम् अस्य अस्ति इति अर्थी, अर्थिनः भावः = इच्छा इति अर्थिभावः, तस्मात् अर्थिभावात्, याचकरूपेणेत्यर्थः । त्वाम् = रघुम् । अभ्युपेतः = प्राप्तः । इति = हेतोः । मे = मम कौत्सस्य । विषादः=खेदः 'अस्ति' ।

समा०—कुलस्य उचिता कुलोचिता । व्यतीतः कालः यस्य सः व्यतीतकालः । अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी, अर्थिनः भावः अर्थिभावः, तस्मात् अर्थिभावात् ।

अभि०—हे भाग्यशालिन्, पूज्येषु श्रद्धावतां स्वकुलपूर्वजानां मध्ये त्वमेव स्वश्रद्धया सर्वश्रेष्ठः । स्वकार्यपूरणार्थमहमेव सर्वस्वं दत्तवतस्तव सन्निधौ विलम्बेन समागत इति तु मे शोकः ।

हिन्दी—हे परमसौभाग्यशालिन् ! पूज्यों के प्रति श्रद्धा से आपने अपने पूर्वजों का भी अतिक्रमण कर दिया है। परन्तु क्या किया जाय, मैं ही समय बिताकर आपके पास कुछ माँगने की इच्छा से विलम्ब से आया हूँ, इसका मुझे अत्यन्त खेद है ॥ १४ ॥

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥१५॥

सञ्जीविनी—हे नरेन्द्र ! तीर्थे सत्पात्रे प्रतिपादिता दत्तर्द्धिर्येन स तथोक्तः 'योनौ जलावतारे च मन्त्र्याद्यष्टादशस्वपि। पुण्यक्षेत्रे तथा पात्रे तीर्थं स्याद्दर्शनेष्वपि' इति हलायुधः। शरीरमात्रेण तिष्ठन् आरण्यका अरण्ये भवा मनुष्या मुनिप्रमुखाः 'अरण्यान्मनुष्ये' इति वुञ्प्रत्ययः। तैरुपात्ता फलमेव प्रसूतिर्यस्य सः स्तम्बेन काण्डेनावशिष्टः। प्रकृत्यादित्वात्तृतीया। नीवार इव आभासि शोभसे।

अन्वयः—नरेन्द्र ! तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः, 'त्वम्' शरीरमात्रेण, तिष्ठन्, आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः, स्तम्बेन, अवशिष्टः नीवारः इव आभासि।

वाच्य०—तीर्थप्रतिपादितर्द्धिना, 'त्वया' तिष्ठता, आरण्यकोपात्तिफलप्रसतिना अवशिष्टेन, नीवारेण, इव आभायते।

व्याख्या—नराणाम्=मनुष्याणाम् ; इन्द्रः=स्वामी इति नरेन्द्रः, सबुद्धौ हे नरेन्द्र ! तीर्थेषु = सत्पात्रेषु, प्रतिपादिता = दत्ता, ऋद्धिः = संपत्, येन सः तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः, 'त्वम्'। शरीरम्=वपुः एव शरीरमात्रम्, तेन शरीरमात्रेण। तिष्ठन् = वर्तमानः। अरण्ये = वने भवाः आरण्यकाः वन्यमनुष्या इत्यर्थः, आरण्यकैः उपात्ता = गृहीता इति आरण्यकोपात्ता, फलम् = वृक्षप्रसवः एव प्रसूतिः = प्रसवः यस्य सः आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः। स्तम्बेन = काण्डेन। अवशिष्टः = शेषः। नीवारः = धान्यविशेषः इव = यथा। आभासि=शोभसे।

समा०—नराणाम् इन्द्रः=नरेन्द्रः, तत्सम्बुद्धौ हे नरेन्द्र ! तीर्थेषु प्रतिपादिता इति तीर्थप्रतिपादिता, तीर्थप्रतिपादिता ऋद्धिः येन सः तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः। शरीरम् एव शरीरमात्रम्, तेन शरीरमात्रेण। अरण्ये भवाः, आरण्यकाः, आरण्यकैः उपात्ता आरण्यकोपात्ता, फलम् एव प्रसूतिः फलप्रसूतिः। आरण्यकोपात्ता फलप्रसूतिः यस्य सः आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः।

अभि०—हे राजन् ! विश्वजिति यज्ञे सत्पात्रेषु स्वीयां सर्वामपि समृद्धिं प्रदाय केवलेन स्वशरीरेणैव स्थितस्त्वं तथैव शोभां वहसि यथा स काण्डमात्राविशिष्टो नीवारो यस्य फलप्रसूतिर्वन्यजनैर्निश्शेषं गृहीता भवेत् ।

हिन्दी—हे राजन् ! विश्वजित यज्ञमें अपनी सम्पूर्ण समृद्धि सत्पात्रों को दान कर केवल, अपने शरीर से स्थित आप ठीक उसी प्रकार से शोभित हो रहे हैं, जैसे कि वह ठंट रूपमें स्थित नीवार, जिसके फल वनवासियों ने तोड़ लिये हों ॥१५॥

स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥१६॥

सञ्जीविनी—भवानेकनराधिपः सार्वभौमः सन् मखजं मखजन्यम् न विद्यते किंचन यस्येत्यकिञ्चनः । मयूरव्यंसकादित्वात्तत्पुरुषः । तस्य भावस्तत्त्वं निर्धनत्वं व्यनक्ति प्रकटयति स्थाने युक्तम् 'युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने' इत्यमरः । तथाहि सुरैर्देवैः पर्यायेण क्रमेण पीतस्य हिमांशोः कलाक्षयो वृद्धेरुपचयाच्च् श्लाघ्यतरो हि वरः खलु 'मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः । कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः' इति भावः । अत्र कामन्दकः—'धर्मार्थे क्षीणकोषस्य क्षीणत्वमपि शोभते । सुरैः पीतावशेषस्य कृष्णपक्षे विधोरिव' इति ॥१६॥

अन्वयः—भवान्, एकनराधिपः, सन्, मखजम्, अकिञ्चनत्वम्, यत् व्यनक्ति, 'तत्' स्थाने, हिं सुरैः पर्यायपीतस्य, हिमांशोः कलाक्षयः, वृद्धेः, श्लाघ्यतरः 'भवति' ।

वाच्य०—भवता, एकनराधिपेन अकिंचनत्वं व्यज्यते, कलाक्षयेण, श्लाघ्यतरेण 'भूयते' ।

व्याख्या—भवान्=रघुः । नराणाम्=मनुष्याणाम् अधिपः=स्वामी, नराधिपः एकः=केवलश्चासौ नराधिपः इति एकनराधिपः । 'सन्' । मखात्=यज्ञात् जातम् =उत्पन्नम्, मखजम् । न=नहि, विद्यते किञ्चन=किमपि यस्य सः अकिञ्चनः= धनशून्यः, अकिञ्चनस्य भावः अकिञ्चनत्वम् धनराहित्यमित्यर्थः । 'यत्' व्यनक्ति=प्रकटयति । 'तत्' स्थाने=युक्तम् । हि=यतः । सुरैः=देवैः । पर्यायेण= क्रमशः पीतः=पानविषयीकृतः इति पर्यायपीतः, तस्य पर्यायपीतस्य । हिमाः= शीतलाः, अंशवः=किरणाः यस्य सः हिमांशुः चन्द्र इत्यर्थः, तस्य हिमांशोः

कलानाम्=षोडशांशानाम्, क्षयः=नाशः इति कलाक्षयः। वृद्धेः=उपचयात्। अतिशयेन श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः इति श्लाघ्यतरः, 'अस्ति'।

समा०—नराणाम् अधिपः नराधिपः, एकः च असौ नराधिपश्च एकनराधिपः। मखात् जातम् मखजम्, तत्। न विद्यते किञ्चन यस्य सः अकिञ्चनः, अकिञ्चनस्य भावः अकिञ्चनत्वम्। पर्यायेण पीतः पर्यायपीतः, तस्य पर्यायपीतस्य। हिमाः अंशवः यस्य सः हिमांशुः, यस्य हिमांशोः। कलानाम् क्षयः कलाक्षयः। अतिशयेन श्लाघ्यः श्लाघ्यतरः।

अभि०—हे राजन्, विश्वजिद्यज्ञे सर्वस्वं याजकेभ्यो दत्वा चक्रवर्त्यपि धनहीनस्त्वं सुतरां शोभसे। यथा शुक्लपक्षीयवृद्ध्यपेक्षया क्रमशो देवैः पीतामृतस्य चन्द्रमसः कृष्णपक्षीयः कलाक्षयः शोभनतरो भवति।

हिन्दी—हे राजन्! चक्रवर्ती होते हुए भी विश्वजित् यज्ञ में सम्पूर्ण धन याजकों को दान में देकर धनरहित होकर आप अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। ठीक है, देवताओं द्वारा पारी-पारी से प्रतिदिन अमृत पिये जाने के कारण क्षीण होनेवाले चन्द्रमा का दुबलापन शुक्ल पक्ष की वृद्धि की अपेक्षा श्लाघ्य होता है॥१६॥

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि॥१७॥

सञ्जीविनी—तत्तस्मात्तावदनन्यकार्यः 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इति विश्वः। प्रयोजनान्तररहितोऽहमन्यतो वदान्यान्तराद् गुर्वर्थं गुरुधनमाहर्तुमर्जयितुं यतिष्ये उद्योक्ष्ये। ते तुभ्यं स्वस्ति शुभमस्तु। 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च' इत्यनेन चतुर्थी। तथाहि चातकोऽपि 'धरणीपतितं तोयं चातकानां रुजाकरम्' इति हेतोरनन्यगतिकोऽपीत्यर्थः। निर्गलितोऽम्ब्वेव गर्भो यस्य तं शरद्घनं नार्दति याचते। 'अर्द गतौ याचने च' इति धातुः। 'याचनार्थे रणेऽर्दनम्' इति यादवः॥१७॥

अन्वयः—तत्, यावत्, अनन्यकार्यः, अहम्, अन्यतः, गुर्वर्थम्, आहर्तुम्, यतिष्ये, ते, स्वस्ति, अस्तु, चातकः, अपि, निर्गलताम्बुगर्भम्, शरद्घनम्, न अर्दति।

वाच्य०—अनन्यकार्येण, मया, यतिष्यते। चातकेन, अपि, निर्गलिताम्बुगर्भः, शरद्घनः, न अर्द्यते।

व्याख्या—तत्=तस्मात्। तावत्=अभीष्टसिद्धिपर्यन्तम्। न=नहि, विद्यते अन्यत्=अपरम्, कार्यम्=कर्म यस्य सः अनन्यकार्यः। अहम्=कौत्सः। अन्यतः अस्मात्, दात्रन्तरसकाशादित्यर्थः। गुरोः=उपाध्यायस्य, अर्थः=धनम् इ गुर्वर्थः, तम्, गुर्वर्थम्। आहर्तुम्=आदातुम्। यतिष्ये=प्रयत्नं करिष्यामि ते=तुभ्यम् रघवे। स्वस्ति=कल्याणम्। अस्तु=भवतु। 'यतः'चातकः=पक्षिविशेष अपि। निर्गलितं=च्युतम्, अम्बु=जलम् एव गर्भः=मध्यभागः यस्य सः निर्गलिता म्बुगर्भः, तं, तथोक्तम्। शरदः=शरदर्तोः, घनः=पयोदः इति शरद्घनः, त शरद्घनम्। न=नहि। अर्दति=याचते।

समा०—न विद्यते अन्यत् कार्यम् यस्य सः अनन्यकार्यः। गुरोः अ गुर्वर्थः, तम् गुर्वर्थम्। निर्गलितः अम्बु एव गर्भः यस्य सः निर्गलिताम्बुगर्भ तम् निर्गलिताम्बुगर्भम्। शरदः घनः शरद्घनः, तम् शरद्घनम्।

अभि०—हे राजन्! अतोऽहं गुरवे देयं धनमन्यस्माद्दातुः सकाशादादातुमि यामि। तव कल्याणमस्तु, यथा चातकोऽपि निर्वृष्टजलं शरत्कालिकं मेघं न याच तथैवाहमपि सत्पात्रप्रतिपादितसकलसमृद्धेस्त्वत्तः सकाशात्, याच्ञां कर्तुं नोत्सहे

हिन्दी—इसलिए हे राजन्, गुरुदक्षिणा के लिए मैं अन्य दाता के सम जाता हूँ, आपका कल्याण हो, क्योंकि चातक भी उस शरत्काल के बादल से कि सम्पूर्ण जल बरसा चुका है, जल की प्रार्थना नहीं करता है ॥१७॥

एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य।
किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ॥१८॥

सञ्जीविनी—एतावद्वाक्यमुक्त्वा प्रतियातुं कामो यस्य तं प्रतियातुक गंतुकामम्। 'तुंकाममनसोरपि' इति मकारलोपः। महर्षेर्वरतन्तोः शिष्यं कौ नृपती रघुर्निषिध्य निवार्य। हे विद्वन्! त्वया गुरवे प्रदेयं वस्तु किं किमात कियत्किंपरिमाणं वा। इत्येवं तं कौत्समन्वयुङ्क्तापृच्छत्। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृ च' इत्यमरः ॥१८॥

अन्वयः—एतावत्, उक्त्वा, प्रतियातुकामम्, महर्षेः, शिष्यम्, नृपतिः, निषि हे विद्वन्, त्वया, गुरवे, प्रदेयम्, वस्तु, किम्, वा, कियत्, इति, तम्, अन्वयुङ्

वाच्य०—प्रतियातुकामः, महर्षेः शिष्यः, नृपतिना, प्रदेयेन, वस्तु केन, वा, कियता, नृपते इति, सः अन्वयुज्यत।

व्याख्या—एतावत्=इयत्, उक्त्वा=कथयित्वा। प्रतियातुम्=प्रतिगन्तुम्, कामः=अभिलाषः यस्य सः प्रतियातुकामः, तम् प्रतियातुकामम्। महर्षेः=वरतन्तोः शिष्यम्=अन्तेवासिनम्। नृणाम्=मनुष्याणाम्, पतिः=स्वामी, इति नृपतिः, राजा रघुः। निषिध्य=निवार्य। हे विद्वन्=हे बुध! त्वया=कौत्सेन। गुरवे= उपाध्यायाय। प्रदेयम्=प्रदातुं योग्यम्। वस्तु=पदार्थः। किम्=किमात्मकम्। कियत्=कियत्परिमाणम्। वा=इति विकल्पेऽव्ययम्। इति तं=कौत्सम्। अन्वयुङ्क्त=अपृच्छत्।

समा०—प्रतियातुम् कामः यस्य सः प्रतियातुकामः, तम् प्रतियातुकामम्। नृणाम् पतिः नृपतिः। वेत्ति इति विद्वान्, तत्सम्बुद्धौ हे बिद्वन्! प्रदातुम् योग्यम् प्रदेयम्। किम् परिमाणमस्य कियत्।

अभि०—एवमुक्त्वा यदा कौत्सः प्रस्थातुमियेष तदा स रघुणा निवारितः पृष्टश्च यत्, हे विद्वन्! त्वया गुरवे देयं वस्तु किमस्ति कियत्परिमाणं चेति।

हिन्दी—ऐसा कहकर कौत्स चलने को तैयार हुए तो उन्हें राजा रघु ने रोका और कहा कि हे विद्वन्! आपको गुरुदक्षिणा में क्या वस्तु देनी है और कितनी देनी है?॥ १८॥

ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे॥ १९॥

सञ्जीविनी—ततो यथावद्यथार्हम्। अर्हार्थे वतिः। विहिताध्वराय विधिवदनुष्ठितयज्ञाय सदाचारायेत्यर्थः। स्मयावेशविवर्जिताय गर्वाभिनिवेशशून्याय अनुद्धतायेत्यर्थः। वर्णानां ब्राह्मणादीनामाश्रमाणां ब्रह्मचर्यादीनां च गुरवे नियामकाय 'वर्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः' इति। 'ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्चतुष्टये। आश्रमोऽस्त्री' इति चामरः। सर्वकार्यनिर्वाहकायेत्यर्थः। तस्मै रघवे विचक्षणो विद्वान्वर्णी ब्रह्मचारी 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः' इत्यमरः। 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' इतीनिप्रत्ययः। स कौत्सः प्रस्तुतं प्रकृतमाचचक्षे॥ १९॥

अन्वयः—ततः यथावत्, विहिताध्वराय, स्मयावेशविवर्जिताय, वर्णाश्रमाणाम्। गुरवे, तस्मै, विचक्षणः, वर्णी, सः, प्रस्तुतम्, आचचक्षे।

वाच्य०—विचक्षणेन वर्णिना तेन प्रस्तुतं आचचक्षे।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्। यथावत्=शास्त्रानुकूलम्, विहितः=कृतः,

अध्वरः=यज्ञः येन सः विहिताध्वरः, तस्मै विहिताध्वराय। स्मयस्य=गर्वस्य, आवेशः=अभिनिवेशः इति स्मयावेशः, स्मयावेशेन विवर्जितः=रहितः इति स्मयावेशविवर्जितः, तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय। वर्णाः=ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राश्च, आश्रमाः=ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्च वर्णाश्रमाः, तेषां वर्णाश्रमाणाम्। गुरवे=नियन्त्रे। तस्मै=रघवे। विचक्षणः=विद्वान्। वर्णी=ब्रह्मचारी, सः=कौत्सः। प्रस्तुतम्=प्रकृतवृत्तम्। आचचक्षे=कथयामास।

समा०—विहितः अध्वरः येन सः विहिताध्वरः, तस्मै विहिताध्वराय। स्मयस्य आवेशः स्मयावेशः, स्मयावेशेन विवर्जितः स्मयावेशविवर्जितः, तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय। वर्णाश्च आश्रमाश्च वर्णाश्रमाः, तेषां वर्णाश्रमाणाम्।

अभि०—ततः स ब्रह्मचारी विद्वान्कौत्सः शास्त्रविधिना संपादितविश्वजिद्यज्ञं तथापि गर्वरहितं चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां च नियामकं रघुं प्रति प्रस्तुतवृत्तान्तमाख्यातवान्।

हिन्दी—तब उस ब्रह्मचारी विद्वान् कौत्स ने शास्त्रविधि से विश्वजित् नामक यज्ञ को पूर्ण करने पर भी गर्वरहित तथा चारों वर्णों एवं आश्रमों के नियामक राजा रघु से प्रस्तुत वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १९ ॥

समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात् ॥ २० ॥

सञ्जीविनी—समाप्तविद्येन मया महर्षिर्गुरुर्दक्षिणायै गुरुदक्षिणास्वीकारार्थं विज्ञापितोऽभूत्। स च गुरुश्चिरायास्खलितोपचारां तां दुष्करां मे भक्तिमेव पुरस्तात्प्रथममगणयत्संख्यातवान्। भक्त्यैव संतुष्टः किं दक्षिणयेत्युक्तवानित्यर्थः। अथवा भक्तिमेव तां दक्षिणामगणयदिति योज्यम् ॥ २० ॥

अन्वयः—समाप्तविद्येन मया, महर्षिः, गुरुदक्षिणायै, विज्ञापितः, अभूत्, सः, 'च', चिराय, अस्खलितोपचाराम्, ताम्, मे भक्तिम्, एव, पुरस्तात्, अगणयत्।

वाच्य०—समाप्तविद्यः, अहम्, महर्षिम्, गुरुदक्षिणायै विज्ञापितवान्, अभूवम्। तेन अस्खलितोपचारा, सा, मे, भक्तिः एव, अगण्यत।

व्याख्या—समाप्ताः=अधीताः, विद्याः=शास्त्राणि येन सः समाप्तविद्यः, तेन समाप्तविद्येन। मया=कौत्सेन। महर्षिः=वरतन्तुः। गुरोः=उपाध्यायस्य, दक्षिणा=सत्कृत्य देयं द्रव्यम् इति गुरुदक्षिणा, तस्यै गुरुदक्षिणायै। विज्ञापितः=

प्रार्थितः। अभूत्=अभवत्। सः=गुरुश्च। चिराय=चिरकालपर्यन्तम्। न=नहि, स्खलितः = त्रुटितः, उपचारः = शुश्रूषा यस्याः सा अस्खलितोपचारा, ताम् अस्खलितोपचाराम्। ताम्=दुष्कराम्। मे=मम, कौत्सस्य, भक्तिम्=शुश्रूषाम् एव, पुरस्तात्=अग्रे। अगणयत्=गणयामास।

समा०—समाप्ताः विद्याः येन सः समाप्तविद्यः, तेन समाप्तविद्येन। गुरोः दक्षिणा गुरुदक्षिणा, तस्यै गुरुदक्षिणायै। न स्खलितः, अस्खलितः अस्खलितः उपचारः यस्याः सा अस्खलितोपचारा, ताम् अस्खलितोपचाराम्।

अभि०—यदा मया गुरोः सकाशात्सर्वा अपि विद्या अधीताः, तदाहं गुरवे गुरुदक्षिणां दातुमकथयम्, तेन च मत्कृता निरन्तरं गुरुशुश्रूषैव श्रेष्ठदक्षिणेति कथितम्।

हिन्दी—जब कि मैंने गुरुजी से समस्त विद्यायें पढ़ लीं तो उनसे गुरुदक्षिणा माँगने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने मेरे द्वारा निरन्तर की गयी शुश्रूषाको ही श्रेष्ठ दक्षिणा समझा॥ २०॥

निर्बन्धसंजातरुषार्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति॥२१॥

सञ्जीविनी—निर्बन्धेन प्रार्थनातिशयेन संजातरुषा संजातक्रोधेन गुरुणा अर्थकार्श्यं दारिद्र्यमचिन्तयित्वाऽविचार्याहं वित्तस्य धनस्य चतस्रो दश च कोटीश्चतुर्दशकोटीर्मे मह्यमाहरानयेति विद्यापरिसंख्यया विद्यापरिसंख्यानुसारेणैवोक्तः। अत्र मनुः–'अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश' इति॥ २१॥

अन्वयः—निर्बन्धसंजातरुषा, गुरुणा अर्थकार्श्यम्, अचिन्तयित्वा, अहम्, वित्तस्य, चतस्रः, दश, च, कोटीः, मे, आहर, इति, विद्यापरिसंख्यया, उक्तः।

वाच्य०—निर्बन्धसंजातरुट्, गुरुः, माम्, चतस्रः, दश, च, कोट्यः, 'त्वया' मे, आह्रियन्ताम् इति उक्तवान्।

व्याख्या—निर्बन्धेन = अत्याग्रहेण, सञ्जाता = उत्पन्ना, रुट् = क्रोधः यस्य सः निर्बन्धसञ्जातरुट्, तेन निर्बन्धसञ्जातरुषा। गुरुणा=आचार्येण, वरतन्तुना। अर्थस्य = धनस्य, कार्श्यम् = अल्पत्वम्, मे, दारिद्र्यमित्यर्थः। अचिन्तयित्वा = अविचार्य। अहम् = कौत्सः। वित्तस्य=धनस्य। चतस्रः = चतुःसंख्यकाः, दश=

दशसंख्यकाः च कोटीः = लक्षशतकानि, चतुर्दश कोटीः इत्यर्थः। मे = मह्यम् वरतन्तवे। आहर=आनय। इति=इत्थम्। विद्यानाम्=चतुर्दशविद्यानाम्, परिसंख्या=परिगणना इति विद्यापरिसंख्या, तया विद्यापरिसंख्यया। उक्तः=कथितः।

समा०—निर्बन्धेन संजाता रुट् यस्य सः निर्बन्धसंजातरुट्, तेन निर्बन्धसंजातरुषा। कृशस्य भावः कार्श्यम्. अर्थस्य कार्श्यम् अर्थकार्श्यम्। तत् अर्थकार्श्यम्। विद्यानाम् परिसंख्या विद्यापरिसंख्या। तया विद्यापरिसंख्यया।

अभि०—ममाग्रहातिशयेन गुरोः क्रोध उत्पन्नोऽतस्तेन मम दारिद्र्यमनालोच्य, त्वया मत्सकाशाच्चतुर्दश विद्या अधीताः, अतस्तदपेक्षया चतुर्दशैव कोटीर्मह्यं धनस्य देहीत्यहं कथितः।

हिन्दी—मेरे अधिक आग्रह करने पर गुरुजी क्रुद्ध हो गये, और मेरी दरिद्रता का विचार किये बिना ही बोले, कि मुझसे प्राप्त चौदह विद्याओं की गणनाके अनुसार चौदह करोड़ मुद्रा मुझे दे दो ॥२१॥

सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम्।
अभ्युत्सहे संप्रति नोपरोद्धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य ॥२२॥

सञ्जीविनी—सोऽहं सपर्याविधिभाजनेनार्घ्यपात्रेण भवन्तं प्रभुशब्द एव शेषो यस्य तं मत्वा निःस्वं निश्चित्येत्यर्थः। श्रुतनिष्क्रयस्य विद्यामूल्यस्याल्पेतरत्वादतिमहत्त्वात्संप्रत्युपरोद्धुं निर्बन्धुं नाभ्युत्सहे ॥ २२ ॥

अन्वयः—सः, अहम्, सपर्याविधिभाजनेन, भवन्तम्, प्रभुशब्दशेषम्, मत्वा, श्रुतनिष्क्रयस्य, अल्पेतरत्वात्, सम्प्रति, उपरोद्धुम्, न अभ्युत्सहे।

वाच्य०—तेन, मया, भवान्, प्रभुशब्दशेषः, 'इति' उपरोद्धुम्, न, अभ्युत्सह्यते।

व्याख्या—सः=गुरुणा तथाऽऽदिष्टः, अहम्=कौत्सः। सपर्यायाः=पूजायाः विधिः = विधानम् इति सपर्याविधिः, सपर्याविधेः भाजनम् = पात्रम्, इति सपर्याविधिभाजनम्, तेन मृत्पात्रेण। भवन्तम्=रघुम्। प्रभवति=समर्थो भवति इति प्रभुः = ईश्वरः, प्रभुः इति शब्दः = पदम् इति प्रभुशब्दः, प्रभुशब्दः एव शेषः = अवशिष्टः, नतु धनमपि यस्य सः प्रभुशब्दशेषः, तम् प्रभुशब्दशेषम्। मत्वा = ज्ञात्वा। श्रुतस्य = शास्त्रस्य, निष्क्रयः = मूल्यम् इति श्रुतनिष्क्रयः, तस्य श्रुतनिष्क्रयस्य। अल्पात् = सूक्ष्मात्, इतरः = अन्यः इति अल्पेतरः,

महान् इत्यर्थः, अल्पेतरस्य भावः अल्पेतरत्वम्, तस्मात् अल्पेतरत्वात्, अत्याधिक्यात्। सम्प्रति=इदानीम्। उपरोद्धुम्=आग्रहं कर्तुम्। न=नहि, अभ्युत्सहे उत्साहं करोमि।

समा०—सपर्यायाः विधिः सपर्याविधिः, सपर्याविधेः भाजनम् सपर्याविधिभाजनम्, तेन सपर्याविधिभाजनेन। प्रभुः इति शब्दः प्रभुशब्दः, प्रभुशब्दः एव शेषः यस्य सः प्रभुशब्दशेषः, तम् प्रभुशब्दशेषम्। श्रुतस्य निष्क्रयः श्रुतनिष्क्रयः, तस्य श्रुतनिष्क्रयस्य। अल्पात् इतरः अल्पेतरः, अल्पेतरस्य भावः अल्पेतरत्वम्, तस्मात् अल्पेतरत्वात्।

अभि०—किन्तु मया मृद्रूपार्घ्यपात्रेणैव भवतो धनशून्यं प्रभुत्वं ज्ञातं तेन महति देये शास्त्रनिष्क्रयद्रव्ये, भवतोऽनुरोधं कर्तुमिदानीं नोत्साहं करोमि।

हिन्दी—मैंने मिट्टी के अर्घ्यपात्र से ही, आपके पास प्रभु-शब्द ही शेष है अर्थात् धन नहीं, यह जान लिया है, अतः ऐसी परिस्थिति में मैं आपसे महती गुरुदक्षिणा के सम्बन्ध में अनुरोध करने का उत्साह नहीं कर रहा हूँ ॥२२॥

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः ॥२३॥

सञ्जीविनी—द्विजराजकान्तिश्चन्द्रकान्तिः 'द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः' इत्यमरः। 'तस्मात्सोमो राजा नो ब्राह्मणानाम्' इति श्रुतेः। द्विजराजकान्तित्वेनार्थावाप्तिवैराग्यं वारयति। एनसः पापान्निवृत्तेन्द्रियवृत्तिर्यस्य स जगदेकनाथो रघुर्वेदविदां वरेण श्रेष्ठेन द्विजेन कौत्सेनेत्थमावेदितो निवेदितः सन् एनं कौत्सं भूयः पुनर्जगाद ॥२३॥

अन्वयः—द्विजराजकान्तिः, एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः जगदेकनाथः, वेदविदाम्, वरेण, द्विजेन, इत्थम्, आवेदितः, 'सन्' एनम्, भूयः, जगाद।

वाच्य०—द्विजराजकान्तिना, एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिना, जगदेकनाथेन, आवेदितेन, 'सता', एषः, भूयः, जगदे।

व्याख्या—द्विजानाम्=ब्राह्मणानाम्, राजा=नृपः, इति द्विजराजः चन्द्रः, इत्यर्थः, द्विजराजस्य कान्तिः=शोभा, इव शोभा यस्य सः द्विजराजकान्तिः। इन्द्रियाणाम्=हृषीकाणाम्, वृत्तिः=व्यापारः इति इन्द्रियवृत्तिः, एनसः=पापात् निवृत्ता=दूरीभूता, इन्द्रियवृत्तिः यस्य सः एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः। जगतः=

विश्वस्य, एकः = केवलश्चासौ नाथः=स्वामी इति जगदेकनाथः। वेदान् = श्रुतीः विदन्ति जानन्ति इति वेदविदः तेषाम्=वेदविदाम् वरेण=श्रेष्ठेन। द्विजेन= ब्राह्मणेन। इत्थम्=एवम्। आवेदितः=निवेदितः 'सन्' एनम्=कौत्सम्। भूयः= पुनः। जगाद=उवाच।

समा०—द्विजानाम् राजा द्विजराजः, द्विजराजस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः द्विजराजकान्तिः। इन्द्रियाणां वृत्तिः इन्द्रियवृत्तिः, एनसः निवृत्ता इति एनोनिवृत्ता, एनोनिवृत्ता इन्द्रियवृत्तिः यस्य सः एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः। एकश्चासौ नाथः इति एकनाथः, जगतः एकनाथः इति जगदेकनाथः। वेदान् विदन्ति इति वेदविदः, तेषाम् वेदविदाम्।

अभि०—चन्द्रतुल्यमनोहरो निष्पापो महीपो रघुर्वेदज्ञानां वरेण्येन कौत्सेनैवं विज्ञापितः पुनरुवाच।

हिन्दी—चन्द्रमा के समान कान्तिवाले तथा किसी भी इन्द्रिय से पाप न न करनेवाले, जगत् के एक मात्र स्वामी रघु वेद को जाननेवालों में श्रेष्ठ कौत्स के इस प्रकार कहने पर फिर बोले ॥२३॥

> **गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम्।**
> **गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः ॥२४॥**

सञ्जीविनी—श्रुतस्य पारं दृष्टवान् श्रुतपारदृश्वा 'दृशेः क्वनिप्' इति क्वनिप्। गुर्वर्थं गुरुदक्षिणार्थं यथा तथार्थी याचकः। विशेषणद्वयेनाप्यस्याप्रत्याख्येयत्वमाह। रघोः सकाशात्कामं मनोरथमनवाप्याप्राप्य वदान्यान्तरं दात्रन्तरं गतः। 'स्युर्वदान्यस्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे' इत्यमरः। इत्येवंरूपोऽयं परीवादस्यापवादस्य नवो नूतनः प्रथमोऽवतार आविर्भावो मे मा भून्मास्तु। रघोरिति स्वनामग्रहणं संभावितत्वद्योतनार्थम्। तथा च 'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते' इति भावः ॥२४॥

अन्वयः—श्रुतपारदृश्वा, गुर्वर्थम्, अर्थी, रघोः, सकाशात्, कामम्, अनवाप्य, वदान्यान्तरम्, गतः, इति, अयम्, मे परीवादनवावतारः, मा, भूत्।

वाच्य०—श्रुतपारदृश्वना, अर्थिना, वदान्यान्तरम् गतम् इति, अनेन, परीवादनवावतारेण, मा भावि।

व्याख्या—श्रुतस्य=शास्त्रस्य, पारम्=अन्तः इति श्रुतपारम्, श्रुतपारम् दृष्टवान्=अवलोकितवान् इति श्रुतपारदृश्वा शास्त्रमर्मज्ञः इत्यर्थः। गुरवे=आचार्याय इदम् इति गुर्वर्थम्, गुरुनिमित्तमित्यर्थः। अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्, इति समासः। अर्थः=प्रयोजनम् अस्य अस्तीति अर्थी याचक इत्यर्थः। रघोः—दिलीपसूनोः। सकाशात्=समीपात्। कामम्=अभिलाषम्। अनवाप्य=अप्राप्य। अन्यः=अपरः वदान्यः=दाता इति वदान्यान्तरम् तद् वदान्यान्तरम्। गतः=यातः। इति=एवम्। अयम्=एषः मे=मम रघोः। नवः=नूतनश्चासौ अवतारः=उत्पत्तिः इति नवावतारः, परीवादस्य=निन्दायाः नवावतारः इति परिवादनवावतारः मा भूत्=नभवेत्।

समा०—श्रुतस्य पारम् श्रुतपारम्, श्रुतपारम् दृष्टवान् इति श्रुतपारदृश्वा। गुरवे इदम् इति गुर्वर्थम्। अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी। अन्यः वदान्यो वदान्यान्तरम्, तत् वदान्यान्तरम्। नवश्चासौ अवतारः नवावतारः, परीवादस्य नवावतारः परीवादनवावतारः।

अभि०—अखिलशास्त्रपारंगतो गुरुमुद्दिश्य याचको रघोः समीपाद्धताशो भूत्वा दात्रन्तरसमीपे गत इति जगति मे निन्दायाः प्रथमावतारो न स्यात्।

हिन्दी—सम्पूर्ण शास्त्रों के पारगामी, गुरु के लिए याचना करनेवाले कौत्स की इच्छा रघु के समीप जाने पर पूर्ण न हुई, अतः वह दूसरे दानी के पास गया, यह मेरी प्रथम निन्दा न हो ॥ २४ ॥

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ॥२५॥

सञ्जीविनी—स त्वं महिते पूजिते प्रशस्ते प्रसिद्धे मदीयेऽग्न्यगारे त्रेताग्निशालायां चतुर्थोऽग्निरिव वसन्द्वित्राणि द्वे त्रीणि वाऽहानि दिनानि। 'संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' इति बहुव्रीहिः। 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' इति डच्प्रत्ययः समासान्तः। सोढुमर्हसि। हे अर्हन्मान्य ! त्वदर्थं तव प्रयोजनं साधयितुं यावद्यते यतिष्ये। 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति भविष्यदर्थे लट् ॥२५॥

अन्वयः—सः त्वम्, महिते, प्रशस्ते, मदीये, अग्न्यगारे, चतुर्थः, अग्निः इव, वसन् द्वित्राणि अह्नानि, सोढुम्, अर्हसि, अर्हन्, यावत्, त्वदर्थम्, साधयितुम्, यते।

वाच्य०—तेन, त्वया, चतुर्थेन, अग्निना इव, वसता, अर्ह्यते, मया, यत्यते।

व्याख्या—सः=गुरुदक्षिणार्थी । त्वम्=कौत्सः । महिते=पूजिते । प्रशस्ते=प्रसिद्धे । मम=रघोः इदम् मदीयम्, तस्मिन् मदीये । अग्नेः अगारम्=गृहम् अग्न्यगारम्, तस्मिन् अग्न्यगारे । चतुर्थः=चतुर्थसंख्यकः, अग्निः=वह्निः, इव=यथा । वसन्=निवासं कुर्वन् । द्वे=द्विसंख्यके वा, त्रीणि=त्रिसंख्यकानि वा, द्वित्राणि, तानि तथोक्तानि । अहानि=दिनानि । सोढुम्=सहनं कर्तुम् । अर्हसि=योग्यो भवसि । हे अर्हन्=पूज्य ! यावत्=यावत्कालम् । तव=कौत्सस्य, अर्थः=प्रयोजनम्, इति त्वदर्थः, तम् इति त्वदर्थम्, तवाभिलषितमित्यर्थः । साधयितुम्=सम्पादयितुम् । यते=प्रयत्नं करोमि ।

समा०—मम इदम् मदीयम्, तस्मिन् मदीये । अग्नेः अगारम् अग्न्यगारम्, तस्मिन् अग्न्यगारे । द्वे वा त्रीणि वा द्वित्राणि । तव अर्थः त्वदर्थः, तम् त्वदर्थम् ।

अभि०—अतस्त्वं मदीयायामग्नित्रययुक्तायामग्निशालायां चतुर्थोऽग्निरिव दिनद्वयं दिनत्रयं वा तावद्वस, यावदहं तेऽभीष्टं साधयितुमुपायं करोमि ।

हिन्दी—इसलिये आप मेरी पवित्र 'दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि' इन तीन अग्निवाली अग्निहोत्रशाला में चौथी अग्नि की भाँति दो या तीन दिन तक निवास करें, जब तक कि मैं आपकी कार्यसिद्धि के लिये कोई उपाय करता हूँ ॥२५॥

तथेति तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्संगरमग्रजन्मा ।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ॥२६॥

सञ्जीविनी—अग्रजन्मा ब्राह्मणः प्रतीतः प्रीतः संस्तस्य रघोरवितथममोघं सङ्गरं प्रतिज्ञाम् 'अथ प्रतिज्ञाजिसंविदापत्सु सङ्गरः' इत्यमरः । 'तां गिरम्' इति केचित्पठन्ति । तथेति प्रत्यग्रहीत् । रघुरपि गां भूमिमात्तसारां गृहीतधनामवेक्ष्य कुबेरादर्थं निष्क्रष्टुमाहर्तुं चकमे इयेष ॥२६॥

अन्वयः—अग्रजन्मा, प्रतीतः, 'सन्' तस्य, अवितथम् संगरम्, तथा इति प्रत्यग्रहीत्, रघुः,अपि, गाम्,आत्तसाराम् अवेक्ष्य, कुबेरात्, अर्थम्, निष्क्रष्टुम् चकमे ।

वाच्य०—अग्रजन्मना, प्रतीतेन, 'सता', तस्य, अवितथः, संगरः प्रत्यग्राहि ।

व्याख्या—अग्रे=प्रथमम्, जन्म=उत्पत्तिः यस्य सः अग्रजन्मा । प्रतीतः=प्रसन्नः, 'सन्' । तस्य=रघोः । अवितथम्=अमोघम् । संगरम्=प्रतिज्ञां । तथा=तेनैव प्रकारेण अस्तु । इति=इत्थम् । प्रत्यग्रहीत्=स्वीचकार । रघुः=दिलीपसूनुः ।

अपि। आत्तः=गृहीतः, सारः अंशः यस्याः सा आत्तसारा, ताम् आत्तसाराम्। गाम्=पृथिवीम्। अवेक्ष्य=आलोच्य। कुबेरात्=धनाधिपात्। अर्थम्=धनम्। निष्क्रष्टुम्=आहर्तुम्। चकमे=इयेष।

समा०—अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा। आत्तः सारः यस्याः सा आत्तसारा, ताम् आत्तसाराम्।

अभि०—ब्राह्मणेन कौत्सेनापि रघोः प्रतिज्ञा न मिथ्या भविष्यतीति तदुक्तं स्वीकृतम्। रघुणाऽपि मया महीतलादर्थं यज्ञात्पूर्वमेव गृहीतमिति विचार्य कुबेराद्धनमानयामीति वाञ्छा कृता।

हिन्दी—ब्राह्मण कौत्स ने प्रसन्न होकर रघु के अव्यर्थ निश्चय को स्वीकार किया। इधर रघुने भी पृथ्वी को सारहीन जानकर कुबेर से धन लाने की इच्छा की ॥ २६ ॥

वसिष्ठमन्त्रोक्षणजातप्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य ॥ २७ ॥

सञ्जीविनी—वसिष्ठस्य यन्मन्त्रेणोक्षणमभिमन्त्र्य प्रोक्षणं तज्जातप्रभावात्सामर्थ्याद्धेतोः उदन्वदाकाशमहीधरेषूदन्वत्युदधावाकाशे महीधरेषु वा मरुत्सखस्य मरुतः सखेति तत्पुरुषः, बहुव्रीहौ समासान्ताभावात्। ततो वायुसहायस्येति लभ्यते। वारिणां वाहको बलाहकः पृषोदरादित्वात्साधुः, तस्येव मेघस्येव तद्रथस्य गतिः संचारो न विजघ्ने न विहता हि ॥ २७ ॥

अन्वयः—वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्, प्रभावात्, उदन्वदाकाशमहीधरेषु, मरुत्सखस्य, बलाहकस्य, इव, तद्रथस्य, गतिः न, हि विजघ्ने.।

वाच्य०—गत्या न विजघ्ने।

व्याख्या—मन्त्रेण=मन्त्रवचनेन, उक्षणम्=प्रोक्षणम्=मार्जनमित्यर्थः इति मन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठस्य=तन्नामकमहर्षेः मन्त्रोक्षणम् इति वसिष्ठमन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठमन्त्रोक्षणात् जातः=उत्पन्नः इति वसिष्ठमन्त्रोक्षणजः, तस्मात् वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्। प्रभावात्=सामर्थ्यात्। उदकानि=जलानि सन्ति अस्मिन् इति उदन्वान्=समुद्रश्च, आकाशः=गगनञ्च, महीधरः=पर्वतश्चेति, उदन्वदाकाशमहीधराः, तेषु उदन्वदाकाशमहीधरेषु। मरुतः=वायोः, सखा=मित्रम् मरुत्सखः पवनसहाय इत्यर्थः, तस्य मरुत्सखस्य। वारीणाम्=जलानाम् वाहकः=

प्रापयिता इति वलाहकः। पृषोदरादित्वात्साधुः मेघ इत्यर्थः। तस्य वलाहकस्य। इव=यथा। तस्य=रघोः। रथः=स्यन्दनः इति तद्रथः, तस्य तद्रथस्य। गतिः=सञ्चारः। नहि=नैव, विजघ्ने=प्रतिरुद्धा।

समा०—मन्त्रेण उक्षणम् मन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठस्य मन्त्रोक्षणम् वसिष्ठमन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठमन्त्रोक्षणात् जातः वसिष्ठमन्त्रोक्षणजः, तस्मात् वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्। उदकानि सन्ति अस्मिन् इति उदन्वान्, आ समन्तात् काशते इति आकाशः, धरन्ति इति धराः, मह्याः धराः महीधराः उदन्वांश्च आकाशश्च महीधरश्चेति, उदन्वदाकाशमहीधराः, तेषु उदन्वदाकाशमहीधरेषु। मरुतः सखा मरुत्सखः, तस्य मरुत्सखस्य। वहति इति वाहकः, वारीणाम् वाहकः वलाहकः, तस्य वलाहकस्य। तस्य रथः तद्रथः, तस्य तद्रथस्य।

अभि०—यथा पवनसहायवतो मेघस्य गतिः सर्वत्र निर्बाधा, तथैव वसिष्ठमन्त्राणां प्रोक्षणसामर्थ्याद्रघोः रथस्यापि सागरे, नभसि, पर्वते च प्रतिबन्धरहिता गतिरासीत्।

हिन्दी—जैसे वायु की सहायता से मेघ की गति सर्वत्र हो जाती है, उसी प्रकार वसिष्ठजी के मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल के प्रोक्षण की सामर्थ्य से रघु के रथ की गति भी समुद्र, आकाश तथा पर्वत कहीं पर भी नहीं रुकती थी। २७॥

अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम्।
सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः॥ २८॥

सञ्जीविनी—अथ प्रदोषे रजनीमुखे तत्काले यानाधिरोहणविधानात् प्रयतो धीरो रघुः समन्ताद्भवः सामन्तः राजमात्रमिति संभावनयैव कैलासनाथं कुबेरं तरसा बलेन जिगीषुर्जेतुमिच्छुः सन् कल्पितं सज्जितं शस्त्रं गर्भे यस्य तं रथमधिशिश्ये रथे शयितवानित्यर्थः। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम्॥ २८॥

अन्वयः—अथ, प्रदोषे, प्रयतः, धीरः, रघुः, सामन्तसम्भावनया, एव कैलासनाथम्, तरसा, जिगीषुः, 'सन्' कल्पितशस्त्रगर्भम्, रथम् अधिशिश्ये।

वाच्य०—प्रयतेन, रघुणा, जिगीषुणा 'सता' रथः, अधिशिश्ये।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्। प्रदोषे=रजनीमुखे, प्रयतः=शुद्धः। धीरः=धैर्यशाली। रघुः=दिलीपसूनुः। समन्तात्=परितो भवः सामन्तः=राजमात्रम् न तु लोकपाल इति भावः, सामन्तस्य सम्भावना=कल्पना, इति सामन्तसम्भावना,

नया सामन्तसम्भावनया । एव । कैलासस्य=प्रसिद्धपर्वतविशेषस्य, नाथः=स्वामी, कैलासनाथः=कुबेरः, तम् कैलासनाथम् । तरसा=बलेन । जिगीषुः=जेतुमिच्छुः । 'सन्' । कल्पितम्=रचितम्, च तत् शस्त्रम्=आयुधम् , इति कल्पितशस्त्रम् , कल्पितशस्त्रम् गर्भे=मध्ये, यस्य सः कल्पितशस्त्रगर्भः, तम् कल्पितशस्त्रगर्भम् । रथम्=स्यन्दनम् । अधिशिश्ये=शयितवान् ।

समा०—समन्तात् भवः सामन्तः, सामन्तस्य सम्भावना सामन्तसम्भावना, तया सामन्तसम्भावनया । कैलासस्य नाथः कैलासनाथः, तम् कैलासनाथम् । जेतुम् इच्छति जिगीषति, जिगीषति इति जिगीषुः । कल्पितम् च तत् शस्त्रम् कल्पितशस्त्रम् , कल्पितशस्त्रं गर्भे यस्य सः कल्पितशस्त्रगर्भः, तम् कल्पितशस्त्रगर्भम् ।

अभि०—ततो धीरो रघुः स्वबलेन सामान्यराजवत्कुबेरं जेतुमिच्छया निशामुखे रथे शस्त्राणि संस्थाप्य स्वयमपि तत्रैव सुप्तः ।

हिन्दी—तब धीरे रघु बलपूर्वक कुबेर को साधारण राजा की भाँति जीतने की इच्छा से सायङ्काल में ही रथ में शस्त्र रखकर स्वयं भी उसमें सो गये ॥२८॥

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोशगृहे नियुक्ताः ।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ॥ २९ ॥

सञ्जीविनी—प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै रघवे कोषगृहे नियुक्ता अधिकृता भाण्डागारिकाः सविस्मयाः सन्तः कोषगृहस्य मध्ये नभस्तो नभसः, पञ्चम्यास्तसिल्प्रयः । पतितां हिरण्मयीं सुवर्णमयीम् 'दाण्डिनायन०' इत्यादिना निपातनात्साधुः । वृष्टिं शशंसुः कथयामासुः ॥ २९ ॥

अन्वयः—प्रातः, प्रयाणाभिमुखाय, तस्मै, कोशगृहे, नियुक्ताः 'जनाः' सविस्मयाः, 'सन्तः', कोशगृहस्य, मध्ये, नभस्तः, पतिताम् , हिरण्मयीम् , वृष्टिम् शशंसुः ।

वाच्य०—नियुक्तैः, सविस्मयैः 'सद्भिः' पतिता, हिरण्मयी, वृष्टिः, शशंसे ।

व्याख्या—प्रातः = प्रभातसमये । प्रयाणस्य = प्रस्थानस्य, अभिमुखः = तत्परः इति प्रयाणाभिमुखः, तस्मै प्रयाणाभिमुखाय, तस्मै = रघवे, कोशस्य = निधेः, गृहम् = भवनम् इति कोशगृहम्, तस्मिन् कोशगृहे । नियुक्ताः = अधिकृताः, 'जनाः' विस्मयेन = आश्चर्येण सह वर्तमानाः सविस्मयाः, 'सन्तः' । कोशगृहस्य = निधिभवनस्य । मध्ये = अन्तः । नभस्तः = आकाशात् । पतिताम् = च्युताम् । हिरण्मयीम् = सुवर्णमयीम् । वृष्टिम् = वर्षणम् । शशंसुः = कथयामासुः ।

समा०—प्रयाणस्य अभिमुखः प्रयाणाभिमुखः, तस्मै प्रयाणाभिमुखाय। कोशस्य गृहम् कोशगृहम्, तस्मिन् कोशगृहे। विस्मयेन सह वर्तमानाः सविस्मयाः।

अभि०—प्रातःकाले यदैव रघुः प्रस्थानं कर्तुमुद्यतस्तदैव विस्मितैर्भाण्डागारिकैः कोशभवनमध्ये गगनात्सुवर्णवृष्टिर्जातेति कथितम्।

हिन्दी—प्रातःकाल ज्योंही रघु प्रस्थान करने को उद्यत हुए, त्योंही आश्चर्य में भरे हुए राजकोष के रक्षकों ने आकर सूचना दी कि कोशभवन में आकाश से सोने की वर्षा हुई है॥ २९॥

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात्।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम्॥३०॥

सञ्जीविनी—भूपती रघुः अभियास्यमानादभिगमिष्यमाणात्कुबेराल्लब्धं वज्रेण कुलिशेन भिन्नं सुमेरोः पादं प्रत्यन्तपर्वतमिव स्थितम् 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः। 'शृङ्गम्' इति क्वचित्पाठः। तं भासुरं भास्वरम् 'भञ्जभासभिदो घुरच्' इति घुरच्। हेमराशिं समस्तं कृत्स्नमेव कौत्साय दिदेश ददौ, न तु चतुर्दशकोटिमात्रमित्येवकारार्थः॥३०॥

अन्वयः—भूपतिः, अभियास्यमानात्, कुबेरात्, लब्धम् वज्रभिन्नम्, सुमेरोः पादम्, इव, 'स्थितम्', तम् भासुरहेमराशिम्, समस्तम्, एव, कौत्साय, दिदेश।

वाच्य०—भूपतिना, लब्धः, वज्रभिन्नः, सुमेरोः, पादः, इव, 'स्थितः', सः भासुरहेमराशिः, समस्तः दिदिशे।

व्याख्या—भुवः=भूमेः, पतिः=स्वामी, राजा रघुः। अभियास्यते असौ अभियास्यमानस्तस्मात् अभियास्यमानात्=अभिगमिष्यमाणात्। कुबेरात्=धनाधिपात्। लब्धम्=प्राप्तम्। वज्रेण=कुलिशेन। भिन्नः=विदारितः इति वज्रभिन्नः, तम् वज्रभिन्नम्। सुमेरोः=हेमाद्रेः, पादम्=प्रत्यन्तपर्वतम्। इव=यथा 'स्थितम्'। तम्=पूर्वकथितम्। भासुराणि=प्रकाशमानानि, च तानि हेमानि=सुवर्णानि इति भासुरहेमानि, भासुरहेम्नाम् राशिः=समूह इति भासुरहेमराशिः, तं भासुरहेमराशिम्। समस्तम्=सकलम्, एव। कौत्साय=वरतन्तुशिष्याय दिदेश=ददौ।

समा०—भुवः पतिः भूपतिः। अभियास्यति इति अभियास्यमानः, तस्मात् अभियास्यमानात्। वज्रेण भिन्नः वज्रभिन्नः, तम् वज्रभिन्नम्। भासुराणि च तानि

हेमानि भासुरहेमानि, भासुरहेम्नाम् राशिः भासुरहेमराशिः, तम् भासुरहेमराशिम् ।

अभि०—वज्रभिन्नः मेरुखण्ड इव स्थितः यावान्सुवर्णराशिः कुबेराद्वृष्टि-रूपेण रघुणा लब्धस्तावन्तं सकलमेव स कौत्साय दातुमियेष ।

हिन्दी—जिसपर चढ़ाई की जानेवाली थी उस कुबेर से वृष्टि के द्वारा प्राप्त, वह चमचमाता हुआ सोने का ढेर सारा ही, महाराज रघु ने कौत्स को दे दिया जो कि वज्र से काटकर गिराया हुआ सुमेरु का टुकड़ा-सा दीखता था ॥ ३० ॥

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥३१॥

सञ्जीविनी—तावर्थिदातारौ द्वावपि साकेतनिवासिनोऽयोध्यावासिनः, 'साकेतः स्यादयोध्यायां कोसला नन्दिनी च सा' इति यादवः । जनस्याभिनन्द्य-सत्त्वौ स्तुत्यव्यवसायावभूताम् । 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः । कौ द्वौ गुरुप्रदेयादधिकेऽतिरिक्तद्रव्ये निःस्पृहोऽर्थी अर्थिकामादर्थिमनोरथादधिकं प्रददातीति तथोक्तः 'प्रे दाज्ञः' इति कप्रत्ययः, नृपश्च ॥३१॥

अन्वयः—तौ, द्वौ, अपि साकेतनिवासिनः, जनस्य, अभिनन्द्यसत्त्वौ, अभूतां 'कौ द्वौ' गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः, अर्थी, अर्थिकामात् अधिकप्रदः, नृपः, च ।

वाच्य०—ताभ्यां, द्वाभ्यां, अभिनन्द्यसत्त्वाभ्यां, अभावि, गुरुप्रदेयाधिक-निःस्पृहेन, अर्थिना, अधिकप्रदेन, नृपेण, च ।

व्याख्या—तौ = याचकवदान्यौ कौत्सरघू । द्वौ = द्विसंख्यकौ । अपि । निवसति = निवासं करोति इति निवासी, साकेतस्य = अयोध्यायाः निवासी इति साकेतनिवासी, तस्य साकेतनिवासिनः । जनस्य = लोकस्य । अभिनन्दितुं योग्यं अभिनन्द्यं = प्रशंसनीयं, सत्त्वं = व्यवसायः, ययोस्तौ अभिनन्द्यसत्त्वौ । अभूतां = आस्ताम् । 'कौ द्वौ' प्रदातुं योग्यं प्रदेयं =दानार्हम् , गुरवे = उपाध्याय प्रदेयं गुरुप्रदेय, गुरुप्रदेयात् अधिकं = अतिरिक्तम् इति गुरुप्रदेयाधिकं, गुरुप्रदेयाधिके निःस्पृहः = इच्छारहितः इति गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः । अर्थः = प्रयोजनम् अस्य अस्ति इति अर्थी = याचकः, कौत्सः । अर्थिनः = याचकस्य, कामः = अभिलाषः इति अर्थिकामः, तस्मात् अर्थिकामात् । अधिकं = विशेषं प्रददाति = वितरति इति अधिकप्रदः । नृन् = मनुष्यान् , पाति=रक्षति इति नृपः—राजा रघुरित्यर्थः, च ।

समा०—निवसति इति निवासी, साकेतस्य निवासी साकेतनिवासी, तस्य साकेतनिवासिनः । अभिनन्दितुं योग्यं अभिनन्द्यं, अभिनन्द्यं सत्त्वं ययोः तौ अभिनन्द्यसत्त्वौ । प्रदातुं योग्यं प्रदेयं, गुरवे प्रदेय गुरुप्रदेयं, गुरुप्रदेयात् अधिकं गुरुप्रदेयाधिकं, गुरुप्रदेयाधिके निःस्पृहः इति गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः। अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी, अर्थिनः कामः अर्थिकामः, तस्मात् अर्थिकामात् । अधिकं प्रददाति इति अधिकप्रदः । नॄन् पाति इति नृपः ।

अभि०—तदा रघुकौत्सयोर्द्वयोरपि दात्रर्थिनोरयोध्यावासिनः प्रशंसां चक्रुः, यतो रघुर्याचकाभिलाषादधिकं दातुमिच्छति स्म, कौत्सश्च गुरवे प्रदेयाद्धनादधिकं नादातुं वाञ्छति स्म ।

हिन्दी—उस समय अयोध्यावासी जन याचक और दाता दोनों ही के व्यवहार की सराहना करने लगे । इधर तो कौत्स गुरुदक्षिणा से अधिक एक कौड़ी भी नहीं लेना चाहते थे और उधर रघु याचककी अभिलाषा से अधिक देने के इच्छुक हो रहे थे ॥३१॥

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ।
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः ॥३२॥

सञ्जीविनी—अथ प्रीतमना महर्षिः कौत्सः संप्रस्थितः प्रस्थास्यमानः सन् "आशंसायां भूतवच्च" इति भविष्यदर्थे क्तः । उष्ट्राणां क्रमेलकानां वामीनां वडवानां च शतैर्वाहितार्थं प्रापितधनमानतपूर्वकायं विनयनम्रमित्यर्थः । प्रजेश्वरं रघु करेण स्पृशन्वाचमुवाच ॥३२॥

अन्वयः—अथ, प्रीतमनाः, महर्षिः, कौत्सः, सम्प्रस्थितः, 'सन्' उष्ट्रवामीशतवाहितार्थं, आनतपूर्वकायं, प्रजेश्वरं, करेण, स्पृशन् वाचं, उवाच ।

वाच्य०—अथ, प्रीतमनसा, महर्षिणा, कौत्सेन, सम्प्रस्थितेन, 'सता' करेण, स्पृशता, वाचं, नृपः, ऊचे ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् । प्रीतं = प्रसन्नं, मनः = चित्तं यस्य सः प्रीतमनाः । महर्षिः = ऋषिश्रेष्ठः । कौत्सः=वरतन्तुशिष्यः । सम्प्रस्थितः=संचलितः 'सन्' । उष्ट्राः = क्रमेलकाः च वाम्यः=वडवाश्च उष्ट्रवाम्यः, उष्ट्रवामीनां शतं इति उष्ट्रवामीशतं, उष्ट्रवामीशतेन वाहितः = प्रापितः, अर्थः=धनं येन सः, तम् उष्ट्रवामीशतवाहितार्थम् । आनतः = नम्रः, पूर्वकायः = देहोत्तरार्धं

यस्य सः आनतपूर्वकायः, तम् आनतपूर्वकायम्। प्रजानाम्=लोकानाम्, ईश्वरः=स्वामी प्रजेश्वरः, तम् प्रजेश्वरम्=राजानं रघुम्। करेण=हस्तेन स्पृशन्=स्पर्शं कुर्वन्। वाचम्=वचनम्। उवाच=जगाद।

समा०—प्रीतम् मनः यस्य सः प्रीतमनाः। महान् चासौ ऋषिः महर्षिः। उष्ट्राश्च वाम्यश्च उष्ट्रवाम्यः, उष्ट्रवामीनाम् शतम् उष्ट्रवामीशतम्, उष्ट्रवामीशतेन वाहितः अर्थः येन सः उष्ट्रवामीशतवाहितार्थः, तम् उष्ट्रवामीशतवाहितार्थम्। पूर्वं कायस्य इति पूर्वकायः, आसमन्तात् नतः आनतः, आनतः पूर्वकायः यस्य सः आनतपूर्वकायः, तं आनतपूर्वकायम्। प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, ईष्टे इति ईश्वरः, प्रजानाम् ईश्वरः, तं प्रजेश्वरम्।

अभि०—ततः प्रसन्नः कौत्सो रघुप्रदत्तेन क्रमेलकाश्वेषु संस्थापितेन धनराशिना सह प्रस्थातुमिच्छन्, शिरसा नम्रीभूतं राजानं रघुं करेण स्पृशन् एवमुवाच।

हिन्दी—तब रघु की दी हुई, ऊँटों और खच्चरों पर लादी, धनराशि के साथ चलने को तैयार एवं प्रसन्न हुए कौत्स, नम्रता से मस्तक अत्यन्त झुकाये हुए रघु के शिर पर हाथ फेरते हुए इस प्रकार बोले ॥३२॥

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥३३॥

संजीविनी—वृत्ते स्थितस्य। 'न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनं पालनं तथा। सत्पात्रे प्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम्' इति कामन्दकः। तस्मिन्वृत्ते स्थितस्य प्रजानामधिपतेर्नृपस्य भूः कामान्सूत इति कामसूर्यदि 'सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्' इति क्विप्। अत्र कामप्रसवने किं चित्रम्। न चित्रमित्यर्थः। किंतु तव प्रभावो महिमा त्वचिन्तनीयः। येन त्वया द्यौरपि मनीषितमभिलषितं दुग्धा। दुहेर्द्विकर्मकत्वादप्रधाने कर्मणि क्तः। 'प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्। अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः' इति स्मरणात् ॥३३॥

अन्वयः—वृत्ते, स्थितस्य, प्रजानां, अधिपतेः, भूः, कामसूः, यदि अत्र, किम्, चित्रं, तु, तव, प्रभावः, अचिन्तीयः, येन, द्यौः, अपि, मनीषितं दुग्धा।

वाच्य०—भुवा, कामसुवा, यदि, 'भूयते' अत्र, केन, चित्रेण भूयते' तु, तव, प्रभावेण, अचिन्तनीयेन भूयते। येन त्वम्, द्याम् अपि मनीषितं दुग्धवान्।

व्याख्या—वृत्ते=राजवृत्ते। स्थितस्य=वर्तमानस्य। प्रजानां=लोकानां, अधिपतेः=स्वामिनः। भूः=पृथ्वी। कामान्=मनोरथान्। सूते=उत्पादयति, इति कामसूः। यदि=चेत्। तर्हि'। अत्र=अस्मिन् विषये। किम्=किमाश्चर्यं चित्रं=आश्चर्यम्। तु=किन्तु। तव=रघोः। प्रभावः=सामर्थ्यम्। चिन्तयितुं=विचारयितुं योग्यः चिन्तनीयः, न चिन्तनीयः इति अचिन्तनीयः। येन=त्वया। द्यौः=स्वर्गः। अपि। मनीषितं=अभिलषितम्। दुग्धा=अदुह्यत।

समा०—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, तासाम्। कामान् सूते, इति कामसूः। चिन्तयितुं योग्यः चिन्तनीयः, न चिन्तनीयः अचिन्तनीयः।

अभि०—हे प्रजाधिप! त्वं राजवृत्ते जागरूकोऽसि, तस्माद्यदि पृथ्वी त्वत्कृते ऽभिलषितमुत्पादयति, नात्राश्चर्यं, त्वन्महिमविशेषस्त्वनेन प्रकटितो भवति यत्त्वया स्वर्गस्यापि स्वमनोऽनुकूलं दोहनं कृतम्।

हिन्दी—राजवृत्त में तत्पर प्रजा के स्वामी आपके लिये यदि पृथ्वी मनोऽनुकूल वस्तु का उत्पादन करती है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं आश्चर्य तो इससे प्रकट होता है कि आपने अपनी इच्छानुसार स्वर्ग का भी दोहन कर लिया ॥३३॥

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव ॥३४॥

सञ्जीविनी—सर्वाणि श्रेयांसि शुभान्यधिजग्मुषः प्राप्तवतस्ते तवान्यत्पुत्रातिरिक्तमाशास्यमाशीःसाध्यमाशंसनीयं वा पुनरुक्तभूतम्। सर्वं सिद्धमित्यर्थः किं त्वीड्यं स्तुत्यं भवन्तं भवतः पितेवात्मगुणानुरूपं, त्वया तुल्यगुणमित्यर्थः पुत्रं लभस्व प्राप्नुहि ॥३४॥

अन्वयः—सर्वाणि, श्रेयांसि, अधिजग्मुषः, ते, अन्यत्, आशास्यं, पुनरुक्तभूतं, 'अस्ति' 'किन्तु' ईड्यं, भवन्तं, भवतः पिता, इव, त्वं, अपि, आत्मगुणानुरूपं, पुत्रं, लभस्व।

वाच्य०—ते अन्येन आशास्येन पुनरुक्तभूतेन 'भूयते'। ईड्यः भवान् भवतः पित्रा इव त्वया अपि आत्मगुणानुरूपः पुत्रः लभ्यताम्।

व्याख्या—सर्वाणि=सकलानि। श्रेयांसि=भद्राणि। अधिजग्मुषः=प्राप्तवतः, ते= तव रघोः। अन्यत्=अपरम्। आशास्यं=आशीःप्राप्यम्। पुनः=भूयः। उक्तभूतं

कथनवत्, द्विरुक्तमिवास्तीत्यर्थः। 'किन्तु' ईडितुं = प्रशंसितुं योग्यं ईड्यम्। भवन्तं=रघुम्। भवतः=रघोः। पिता=जनकः। इव=यथा। त्वम्=रघुः अपि। आत्मनः=स्वस्य, गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः, तेषां अनुगुणः इति आत्मगुणानुरूपः, तम् आत्मगुणानुरूपम्। पुत्रं=सुतं, लभस्व=प्राप्नुहि।

समा०—ईडितुं योग्यः ईड्यः, तम् ईड्यम्। आत्मनः गुणाः आत्मगुणाः, आत्मगुणानाम् अनुरूपः आत्मगुणानुरूपः, तम् आत्मगुणानुरूपम्।

अभि०—सर्वेऽपि कल्याणमयाः पदार्थास्त्वत्सन्निधौ प्रथमत एव वर्तन्तेऽतस्तेषामाशीर्द्विरुक्तभूतेवास्ति। तथापि भवतः पित्रा सकलगुणाकरो यथा भवानधिगतस्तथैव त्वमपि स्वत्सदृशं पुत्रं प्राप्नुहि।

हिन्दी—सांसारिक समस्त सुख आपको पहले से ही उपलब्ध हैं; अतः उनके विषय में दिया गया आशीर्वाद पुनरुक्त ही होगा, तथापि जिस प्रकार प्रशंसा के योग्य आपको आपके पिता ने प्राप्त किया था उसी प्रकार आप भी अपने गुणों के अनुरूप पुत्र प्राप्त करें ॥ ३४ ॥

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम्।
राजाऽपि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः ॥ ३५ ॥

सञ्जीविनी—अग्रजन्मा ब्राह्मणः 'अग्रजन्मा द्विजे श्रेष्ठे भ्रातरि ब्रह्मणि स्मृतः' इति विश्वः। इत्थं राज्ञ आशिषं प्रयुज्य दत्त्वा गुरोः सकाशं समीपं प्रतीयाय प्राप। राजाऽपि जीवलोको जीवसमूहः 'जीवः प्राणिनि गीष्पतौ' इति विश्वः। अर्कादालोकं प्रकाशमिव चैतन्यं इति पाठे ज्ञानम्। तस्मादृषेराशु सुतं लेभे प्राप ॥ ३५ ॥

अन्वयः—अग्रजन्मा, इत्थम्, राज्ञे, आशिषं, प्रयुज्य, गुरोः सकाशं, प्रतीयाय। राजा, अपि, जीवलोकः, अर्कात्, आलोकं, इव, तस्मात्, आशु, सुतं, लेभे।

वाच्य०—अग्रजन्मना प्रतीये, राज्ञा अपि जीवलोकेन आलोकः इव सुतः लेभे।

व्याख्या—अग्रे = प्रथमं, जन्म = उत्पत्तिः, यस्य सः अग्रजन्मा = ब्राह्मणः कौत्सः। इत्थम् = एवम्। राज्ञे = नृपाय, रघवे। आशिषं = आशीर्वादम्। प्रयुज्य = दत्त्वा। गुरोः = उपाध्यायस्य वरतन्तोः। सकाशं = समीपम्। प्रतीयाय = प्रापत्। राजा = नृपः, रघुः, अपि। जीवानां = प्राणिनां, लोकः = समूहः, इति जीवलोकः। अर्कात् = सूर्यात्। आलोकं = प्रकाशम् इव = यथा। तस्मात् = कौत्सर्षेः, आशु = शीघ्रम्। सुतं = पुत्रम्। लेभे = प्राप्तवान्।

समा०—अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा। जीवानां लोकः जीवलोकः।

अभि०—एवं कौत्सो रघवे सुताशिषं प्रदाय गुरोः समीपं प्राप। रघुणापि तत्प्रभावादल्पीयसैव कालेन यथा लोकः सूर्यात्प्रकाशमाप्नोति तथैव सुतः प्राप्तः।

हिन्दी—इस प्रकार कौत्स रघु को आशीर्वाद देकर गुरु के पास चले गये। इधर रघु ने भी थोड़े ही समय में उस आशीर्वाद के प्रभाव से इस प्रकार पुत्र प्राप्त किया जैसे कि संसार सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता है॥ ३५॥

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार॥ ३६॥

सञ्जीविनी—तस्य रघोर्देवी महिषी ब्राह्मे 'तस्येदम्' इत्यण्। ब्रह्मदेवताकेऽभिजिन्नामके मुहूर्ते किलेषदसमाप्तं कुमारं कुमारकल्पं स्कन्दसदृशं 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' इत्यनेन कल्पप्प्रत्यः। कुमारं पुत्रं सुषुवे 'कुमारो बालके स्कन्दे' इति विश्वः। अतो ब्राह्ममुहूर्तोत्पन्नत्वात्पिता रघुर्ब्रह्मणो विधेरेव नाम्ना तमात्मजन्मानं पुत्रमजमजनामकं चकार। 'अजो हरौ हरे कामे विधौ छागे रघोः सुते' इति विश्वः॥ ३६॥

अन्वयः—तस्य, देवी, ब्राह्मे, मुहूर्ते, किल, कुमारकल्पं, कुमारं, सुषुवे, अतः, पिता, ब्रह्मणः, एव, नाम्ना, तम्, आत्मजन्मानं, अजं चकार।

वाच्य०—देव्या कुमारकल्पः कुमारः सुषुवे। पित्रा सः आत्मजन्मा अजः चक्रे।

व्याख्या—तस्य रघोः। देवी=महिषी। ब्रह्मणः=स्वयम्भुवः इदम् ब्राह्मम्, तस्मिन् ब्रह्मदेवताकेऽभिजिन्नामके इत्यर्थः। मुहूर्त्ते=घटिकाद्वयात्मके काले। किल इति प्रसिद्धौ। ईषदसमाप्तः कुमारः=कार्तिकेयः इति कुमारकल्पः, तम् कुमारकल्पं कार्तिकेयसदृशमित्यर्थः। कुमारं=बालम्। सुषुवे=प्रासोष्ट। अतः =अस्मादेव कारणात्, ब्राह्मे मुहूर्ते जातत्वादित्यर्थः। पिता=जनकः रघुः ब्रह्मणः=स्वयम्भुवः एव नाम्ना=अभिधानेन। तम्=बालम्। आत्मनः=स्वस्मात्, जन्म=उत्पत्तिः यस्य सः आत्मजन्मा, तम् आत्मजन्मानं, पुत्रमित्यर्थः। न जायते=उत्पन्नः भवति इत्यजः=ब्रह्मा, तम् अजं, अजाह्वयं चक्रे=अकरोत्।

समा०—ईषदसमाप्तः कुमारः कुमारकल्पः, तं कुमारकल्पम्। आत्मनः जन्म यस्य सः आत्मजन्मा, तम् आत्मजन्मानम्। न जायते इति अजः, तम् अजम्।

अभि०—रघोर्महिषी ब्राह्मे मुहूर्ते कार्तिकेयसदृशं पुत्रं जनयामास। रघुरपि तं ब्रह्मदेवताकमुहूर्तजन्मसंबन्धेनाजनामानं चकार।

हिन्दी—राजा रघु की रानी ने ब्राह्ममुहूर्त में कार्तिकेय के सदृश पुत्र उत्पन्न किया। अतः रघु ने उसका नाम ब्रह्मा के ही नाम से 'अज' रक्खा ॥३६॥

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तिता दीप इव प्रदीपात् ॥३७॥

सञ्जीविनी—ओजस्वि तेजस्वि बलिष्ठं वा 'ओजस्तेजसि धातूनामवष्टम्भप्रकाशयोः। ओजो बले च दीप्तौ च' इति विश्वः। रूपं वपुः। 'अथ रूपं नपुंसकम् स्वभावाकृतिसौन्दर्यवपुषि श्लोकशब्दयोः।' इति विश्वः। तदेव पैतृकमेव वीर्यं शौर्यं तदेव नैसर्गिकं स्वाभाविकमुन्नतत्वं तदेव तादृशमेवेत्यर्थः। कुमारो बालकः प्रवर्तितः उत्पादितो दीपः प्रदीपात्स्वोत्पादकदीपादिव स्वात्स्वकीयात् 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इति स्माद्भावो वैकल्पिकः। कारणाज्जनकान्न बिभिदे भिन्नो नाभूत्, सर्वात्मना तादृश एवाभूदित्यर्थः ॥३७॥

अन्वयः—ओजस्वि, रूपम्, तत्, एव, वीर्यम्, तत्, एव, नैसर्गिकम्, उन्नतत्वम्, 'तत् एव' 'आसीत्' कुमारः, प्रदीपात्, प्रवर्तितः दीपः, इव, स्वात्, कारणात् न बिभिदे।

वाच्य०—ओजस्विना रूपेण तेन एव, वीर्येण तेन एव, नैसर्गिकेण उन्नतत्वेन 'तेन एव, अभूयत' कुमारेण प्रदीपात् प्रवर्तितेन दीपेन इव स्वात् कारणात् न बिभिदे।

व्याख्या—ओजः=तेजः, अस्यास्तीति ओजस्वि। रूपम्=आकृतिः। तत्=पैतृकम् एव। वीर्यम्=शौर्यम् 'तत् एव' निसर्गात्=स्वभावात्, जातम्=उत्पन्नम्, नैसर्गिकम्। उन्नतस्य=प्रांशुत्वस्य भावः उन्नतत्वम्। 'तत् एव' 'आसीत्'। कुमारः = बालः अजः। प्रदीपात् = दीपकात्। प्रवर्तितः = उत्पादितः, दीपः = दीपकः। इव = यथा। स्वात् = स्वकीयात्। कारणात् = जनकात्। न = नहि। बिभिदे=भिन्नोऽभूत्।

समा०—ओजोऽस्त्यस्येत्योजस्वि। निसर्गाज्जातं नैसर्गिकम्। उन्नतस्य भाव उन्नतत्वम्।

अभि०—कुमारोऽजः स्वतेजसा, वीर्येण, स्वाभाविकोन्नत्येन च स्वजनकं रघुं तथैवानुचकार यथा दीपः परस्माद्दीपात्प्रज्वलितस्तं प्रकाशादिना पूर्णतोऽनुकरोति।

हिन्दी—कुमार अज का वही तेजोयुक्त रूप, वही शौर्य तथा वही स्वाभाविक ऊँचाई थी अर्थात् सभी गुण रघु से इस प्रकार मिल रहे थे जैसे कि एक दीपक से, दूसरे दीपक जलाये जाने पर, प्रकाश आदि गुण भिन्न नहीं होते ॥३७॥

उपात्तविद्यं विधिवद् गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् ।
श्रीः साभिलाषाऽपि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष ॥३८॥

सञ्जीविनी—गुरुभ्यो विधिवद्यथाशास्त्रमुपात्तविद्यं लब्धविद्यम् यौवनस्योद्भेदादाविर्भावाद्धेतोर्विशेषेण कान्तं सौम्यं तमजं प्रति साभिलाषापि श्रीः धीरा स्थिरोन्नतचित्ता 'स्थिरा चित्तोन्नतिर्या तु तद्धैर्यमिति संज्ञितम्' इति भूपालः । कन्या पितुरिव गुरोरनुज्ञामाचकाङ्क्षेयेष । यौवराज्यार्होऽभूदित्यर्थः । अनुज्ञाशब्दात्पितृपारतन्त्र्यमुपमासामर्थ्यात्पाणिग्रहणयोग्यता च ध्वन्यते ॥३८॥

अन्वयः-गुरुभ्यः, विधिवत्, उपात्तविद्यम्, यौवनोद्भेदविशेषकान्तम्, तम्, 'प्रति' साभिलाषा, अपि, श्रीः, धीरा, कन्या, पितुः, इव, गुरोः, अनुज्ञाम् आचकाङ्क्ष।

वाच्य०—तम् 'प्रति' साभिलाषया अपि श्रिया धीरया कन्ययेव अनुज्ञा आचकाङ्क्षे ।

व्याख्या—गुरुभ्यः=आचार्येभ्यः । विधिना=शास्त्रोक्तरीत्या, तुल्यम्=समम् विधिवत्, शास्त्रानुकूलमित्यर्थः । उपात्ताः=गृहीताः, विद्याः=चतुर्दशविद्याः येन सः उपात्तविद्यः, तम् उपात्तविद्यम् । विशेषेण=आधिक्येन, कान्तः=मनोहरः, इति विशेषकान्तः । यूनः=तरुणस्य, भावः यौवनम्, यौवनस्य उद्भेदः=प्रादुर्भावः, इति यौवनोद्भेदः, यौवनोद्भेदेन विशेषकान्तः, इति यौवनोद्भेदविशेषकान्तः, तम्, यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् । तम्=अजम् 'प्रति' । अभिलाषेण=मनोरथेन सह वर्तमाना साभिलाषा=सोत्कण्ठा । अपि श्रीः=राज्यलक्ष्मीः । धीरा=धैर्यशालिनी । कन्या=कुमारी । पितुः=जनकस्य । इव=यथा । गुरोः=पितुः, रघोः । अनुज्ञाम्=अनुमतिम् । आचकाङ्क्ष=इयेष । स अजः युवराजपदारोहणयोग्योऽभूदित्यर्थः ।

समा०—विधिमर्हतीति विधिवत् । उपात्ता विद्या येन सः उपात्तविद्यः, तम् उपात्तविद्यम् । विशेषेण कान्तः विशेषकान्तः, तम् । यूनः भावः यौवनम्, यौवनस्य उद्भेदः यौवनोद्भेदः, यौवनोद्भेदेन विशेषकान्तः इति यौवनोद्भेदविशेषकान्तः, तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् । अभिलाषेण सह वर्तमाना साभिलाषा ।

अभि०—यथा काऽपि धीरा कन्या नूतनतारुण्येन मनोहरं कान्तं प्रति स्पृहावत्यपि पितुराज्ञामपेक्षते तथैव तादृशमनोहरमजं प्रत्यभिलाषयुक्ताऽपि राज्यलक्ष्मीस्तत्पितुर्नृपस्य रघोराज्ञामपेक्षते स्म ।

हिन्दी—विधिवत् गुरुजनों से सम्पूर्ण विद्यायें प्राप्त कर चुकने पर युवावस्था आ जाने से विशेष मनोहर अज के प्रति उत्कण्ठित होती हुई भी राज्यलक्ष्मी उसके वरण में रघु की आज्ञा की इस प्रकार प्रतीक्षा कर रही थी जैसे कि कोई धीर कन्या अभीप्सित वर के प्रति पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा करती हो ॥३८॥

अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः ।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः ॥३९॥

सञ्जीविनी—अथ स्वसुर्भगिन्या इन्दुमत्याः स्वयंवरार्थे कुमारस्याजस्यानयने उत्सुकेन क्रथकैशिकानां विदर्भदेशानामीश्वरेण स्वामिना भोजेन राज्ञाप्तो हितो दूतो रघवे विसृष्टः प्रेषितः । क्रियामात्रयोगेऽपि चतुर्थी ॥३९॥

अन्वयः—अथ, स्वसुः, इन्दुमत्याः, स्वयंवरार्थम्, कुमारानयनोत्सुकेन, क्रथकैशिकानाम्, ईश्वरेण, भोजेन, आप्तः, दूतः, रघवे, विसृष्टः ।

वाच्य०—कुमारानयनोत्सुकः क्रथकैशिकानाम् ईश्वरः भोजः आप्त दूतं विसृष्टवान् ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् । स्वसुः=भगिन्याः । इन्दुमत्याः=तन्नाम्न्याः । स्वयंवरायेति स्वयंवरार्थम् = स्वयंवरणार्थम् । कुमारस्य = राजकुमारस्याजस्य, आनयनम्=आकारणम् इति कुमारनयनम्, कुमारानयने उत्सुकः=उत्कण्ठितः, इति कुमारानयनोत्सुकः, तेन कुमारानयनोत्सुकेन । क्रथकैशिकानाम्=विदर्भदेशानाम् । ईश्वरेण=स्वामिना । भोजेन=तन्नाम्ना । आप्तः=विश्वस्तः । दूतः=चरः । रघवे=दिलीपसूनवे । विसृष्टः=प्रहितः ।

समा०—स्वयंवरायेति स्वयंवरार्थम् । कुमारस्यानयनं कुमारानयन कुमारानयन उत्सुक इति कुमारानयनोत्सुकः, तेन कुमारानयनोत्सुकेन ।

अभि०—अथ विदर्भदेशाधिपतिर्भोजः स्वस्वसुरिन्दुमत्याः स्वयंवरेऽजानयनाकाङ्क्षयैकं विश्वस्तं सन्देशहरं रघुसमीपे प्रेषितवान् ।

हिन्दी०—इसी समय विदर्भदेश के राजा भोज ने अपनी बहिन इन्दुमती के स्वयवर में कुमार अज को बुलाने की इच्छा से एक विश्वस्त दूत राजा रघु के समीप भेजा ॥ ३९ ॥

तं श्लाघ्यसंबन्धमसौ विचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रम् ।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् ॥४०॥

सञ्जीविनी—असौ रघुस्तं भोजं श्लाघ्यसंबन्धमनूचानत्वादिगुणयोगात्स्पृहणीयसंबन्धं विचिन्त्य विचार्य पुत्रं च दारक्रियायोग्यदशं विवाहयोग्यवयसं विचिन्त्य ससैन्यमेनं पुत्रमृद्धां समृद्धां विदर्भाधिपस्य भोजस्य राजधानीं पुरीं प्रति प्रस्थापयामास । धीयतेऽस्यामिति धानी । 'करणाधिकरणयोश्च' इत्यधिकरणे ल्युट् प्रत्ययः, राज्ञां धानीति विग्रहः ॥४०॥

अन्वयः—असौ, तम्, श्लाघ्यसम्बन्धम्, विचिन्त्य, पुत्रम्, च दारक्रियायोग्यदशम् 'विचिन्त्य' ससैन्यम्, एनम्, ऋद्धाम्, विदर्भाधिपराजधानीम्, प्रति, प्रस्थापयामास ।

वाच्य०—अनेन, एषः, ससैन्यः, प्रस्थापयाञ्चक्रे ।

व्याख्या—असौ = रघुः । तम् = भोजम् । श्लाघितुम् = प्रशंसितुम् योग्यः श्लाघ्यः, श्लाघ्यः संबन्धः=सम्मेलनम् येन सः श्लाघ्यसम्बन्धः तं श्लाघ्यसम्बन्धम् । विचिन्त्य = विचार्य । पुत्रम् = सुतम्, अजम् । च = तथा । दाराणाम् = भार्यायाः, क्रिया=कर्म इति दारक्रिया, दारक्रियायाः योग्या=अनुकूला, दशा= अवस्था, यस्य सः दारक्रियायोग्यदशः, तं दारक्रियायोग्यदशम् । 'विचिन्त्य', सेना = चमूः, एव सैन्यम्, सैन्येन सह वर्तत इति ससैन्यः, तं ससैन्यम् । एनम् = अजम् । ऋद्धाम् = समृद्धाम् । विदर्भाणाम् = क्रथकैशिकानाम्, अधिपः=स्वामी, इति विदर्भाधिपः, विदर्भाधिपस्य राजधानी = राजनगरी इति विदर्भाधिपराजधानी, तां विदर्भाधिपराजधानीम्, 'प्रति' । प्रस्थापयामास=प्रेषयामास ।

समा०—श्लाघितुं योग्यः श्लाघ्यः, श्लाघ्यः सम्बन्धः यस्य स श्लाघ्यसंबंधः, तं श्लाघ्यसम्बन्धम् । दाराणां क्रिया दारक्रिया, दारक्रियाया योग्या दशा यस्यासौ दारक्रियायोग्यदशः, तं दारक्रियायोग्यदशम् । विदर्भाणामधिपो विदर्भाधिपः, विदर्भाधिपस्य राजधानी विदर्भाधिपराजधानी, तां विदर्भाधिपराजधानीम् ।

अभि०—रघुणा विदर्भाधिपतिना सह सम्बन्धं प्रशस्यं विचार्य तथा कुमारमजमपि विवाहयोग्यं दृष्ट्वा सेनया सह सोऽजो भोजपुरीं प्रति प्रस्थापितः ।

हिन्दी—रघु ने विदर्भदेश के राजा भोज से सम्बन्ध करना उचित समझा

और अज की अवस्था को भी विवाह के उपयुक्त जानकर उसे सेना सहित विदर्भ देश की राजधानी की ओर भेज दिया ॥ ४० ॥

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः ।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः ॥ ४१ ॥

सञ्जीविनी—उपकार्यासु राजयोग्येषु पटभवनादिषु 'सौधोऽस्त्री राजसदनमुपकार्योपकारिका' इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामी । उपक्रियत उपकरोति वा पटमण्डपादि राजसदनमिति । रचिता उपचाराः शयनादयो येषु ते तथोक्ता जानपदानां जनपदेभ्य आगतानामुपदाभिरुपायनैः वन्या वने भवा इतरे येषां ते वन्येतराः अवन्या इत्यर्थः । 'न बहुव्रीहौ' इति सर्वनामसंज्ञानिषेधः । तत्पुरुषे सर्वनामसंज्ञा दुर्वारैव । तस्य मनुजेन्द्रसूनोरजस्य मार्गे निवासा वासनिका उद्यानान्याक्रीडाः 'पुमानाक्रीड उद्यानम्' इत्यमरः । तान्येव विहारा विहारस्थानानि तत्कल्पाः तत्सदृशाः 'ईषदसमाप्तौ०' इति कल्पप्प्रत्ययः । बभूवुः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—उपकार्यारचितोपचाराः, जानपदोपदाभिः वन्येतराः, तस्य, मनुजेन्द्रसूनोः, मार्गे, निवासाः, उद्यानविहारकल्पाः बभूवुः ।

वाच्य०—उपकार्यारचितोपचारैः वन्यैः निवासैः उद्यानविहारकल्पैः, बभूवे ।

व्याख्या—उपक्रियन्त इत्युपकार्याः=पटभवनानि, उपकार्यासु रचिताः= सम्पादिताः, उपचाराः=शयनादयः येषु ते उपकार्यारचितोपचाराः । जनपदेभ्यः= प्रान्तेभ्यः, आगताः जानपदाः, जानपदानाम् उपदाः=उपायनानि इति जानपदोपदाः, ताभिः जानपदोपदाभिः । वने=अरण्ये भवा वन्याः, इतरे= अन्ये, येषान्ते वन्येतराः अवन्या इत्यर्थः । तस्य=अजस्य । मनुजानाम्= मनुष्याणाम्, इन्द्रः=स्वामी मनुजेन्द्रः राजा रघुरित्यर्थः, मनुजेन्द्रस्य सूनुः= पुत्रः इति मनुजेन्द्रसूनुः, तस्य मनुजेन्द्रसूनोः । मार्गे=पथि । निवासाः= वासस्थलानि । उद्यानानि = आक्रीडाः, एव विहाराः=विहरणस्थानानि इति उद्यानविहाराः, ईषदूनाः उद्यानविहाराः इति उद्यानविहारकल्पाः । बभूवुः= आसन् ।

समा०—उपक्रियन्ते इति उपकार्याः, उपकार्यासु रचिताः उपचाराः येषु ते उपकार्यारचितोपचाराः । जनपदेभ्यः आगताः जानपदाः, जानपदानामुपदाः जानपदोपदाः, ताभिः । वने भवा वन्याः इतरे येषान्ते वन्येतराः । मनुजानामिन्द्रः

मनुजेन्द्रः, मनुजेन्द्रस्य सूनुः मनुजेन्द्रसूनुः, तस्य मनुजेन्द्रसूनोः। उद्यानानि एव विहाराः उद्यानविहाराः, ईषदूना उद्यानविहाराः इति उद्यानविहारकल्पाः।

अभि०—भोजनगरीं प्रति गच्छतोऽजस्य मार्गे पटमण्डपेषु रचितैः शयनादिभिर्जनपदनिवासिभिरर्पितै रुपायनैश्च मार्ग-निवासा उद्यानविहारसदृशा बभूवुः।

हिन्दी—विदर्भ देशकी राजधानी जाते हुए मार्ग में बनाये अज के पड़ाव, सुन्दर शय्यादि से राजसी उद्यान-विहारों के समान ही हो गये थे ॥४१॥

स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम्॥ ४२ ॥

सञ्जीविनी—विलङ्घिताध्वाऽतिक्रान्तमार्गः सोऽजः सीकरार्द्रैः शीतलैरित्यर्थः, मरुद्भिर्वातैरानर्तिताः कम्पिता नक्तमालाश्चिरबिल्वाख्यवृक्षभेदाः 'चिरबिल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके' इत्यमरः। यस्मिंस्तस्मिन् निवेशार्ह इत्यर्थः। नर्मदाया रोधसि रेवायास्तीरे क्लान्तं श्रान्तं रजोभिर्धूसराः केतवो ध्वजा यस्य तत्सैन्यं निवेशयामास ॥ ४२ ॥

अन्वयः—विलङ्घिताध्वा, सः, सीकारार्द्रैः, मरुद्भिः, आनर्तितनक्तमाले, नर्मदारोधसि, क्लान्तम्, रजोधूसरकेतु, सैन्यम्, निवेशयामास।

वाच्य०—विलङ्घिताध्वना, तेन, सैन्यं, निवेशयाञ्चक्रे।

व्याख्या—विलङ्घितः=अतिक्रान्तः, अध्वा=मार्गः येन सः विलङ्घिताध्वा, सः=अजः। सीकरैः=अम्बुकणैः, आर्द्राः=क्लिन्नाः इति सीकरार्द्राः, तैः सीकरार्द्रैः। मरुद्भिः=वायुभिः। आनर्तिताः=कम्पिताः, नक्तमालाः=चिरबिल्ववृक्षाः यस्मिंस्तत् आनर्तितनक्तमालम्, तस्मिन् आनर्तितनक्तमाले। नर्मदायाः=रेवायाः, रोधः=कूलम्, इति नर्मदारोधः, तस्मिन् नर्मदारोधसि। क्लान्तम्=परिश्रान्तम्, रजोभिः=धूलिभिः, धूसराः=ईषत्पाण्डवः, केतवः=ध्वजाः, यस्य तत्, रजोधूसरकेतु। सेनैव सैन्यम्, तत्=चमूम्। निवेशयामास=निवासं कारयामास।

समा०—विलङ्घितः अध्वा येन सः विलङ्घिताध्वा। सीकरैः आर्द्राः इति सीकरार्द्राः, तैः सीकरार्द्रैः। आनर्तिता नक्तमाला यस्मिंस्तत् आनर्तितनक्तमालम्, तस्मिन्आनर्तितनक्तमाले। नर्मदाया रोधः नर्मदारोधः, तस्मिन् नर्मदारोधसि। रजोभिर्धूसराः केतवो यस्य तत्, रजोधूसरकेतु। सेना एव सैन्यम्, तत्।

अभि०—मार्गे गच्छता अजेन नर्मदातटे धूसरपताकावती श्रान्ता सेना न्यवेशि, यत्र, जलकणशीतलैः पवनैः करञ्जकवृक्षाः कम्पन्ते स्म ।

हिन्दी—मार्ग में चलते हुए कुमार अज ने ,नर्मदा के उस तट पर धूल से धूसर पताकावाली तथा थकी हुई अपनी सेना का पड़ाव किया, जहाँ कि करञ्ज के वृक्ष, जल की बूँदों से युक्त ठंढी वायु से हिल रहे थे ॥४२॥

अथोपरिष्टाद् भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः ।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज ॥४३॥

सञ्जीविनी—अथोपरिष्टादूर्ध्वम् । 'उपर्युपरिष्टात्' इति निपातः । भ्रमद्भिः मदलोभादिति भावः, भ्रमरैः प्रागुन्मज्जनात्पूर्वं सूचितो ज्ञापितोऽन्तःसलिले प्रवेशो यस्य स तथोक्तः । निर्धौतदाने क्षालितमदे अत एवामले गण्डभित्ती यस्य स तथोक्तः 'दानं गजमदे त्यागे' इति शाश्वतः । प्रशस्तौ गण्डौ गण्ड-भित्ती 'प्रशंसावचनैश्च' इति समासः । भित्तिशब्दः प्रशस्तार्थः । तथा च गणरत्नमहोदधौ—'मतल्लिकोद्घमिश्राः स्युः प्रकाण्डस्थलभित्तयः' इति । प्रदेशौ वा 'भित्तिः प्रदेशे कुड्येऽपि' इति विश्वः । निर्धौतदानेनामला गण्डभित्ति-र्यस्येति वा । वन्यो गजः सरित्तो नर्मदायाः सकाशात् पञ्चम्यास्तसिल्प्रत्ययः, उन्ममज्जोत्थितः ॥४२॥

अन्वयः—अथ, उपरिष्टात्, भ्रमद्भिः, भ्रमरैः, प्राक्सूचितान्तःसलिल-प्रवेशः, निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः, वन्यः, गजः, सरित्तः उन्ममज्ज ।

वाच्य०—प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशेन निर्धौतदानामलगण्डभित्तिना वन्येन, गजेन उन्ममज्जे ।

व्याख्या—अथ=सेनानिवेशानन्तरम् । उपरिष्टात्=उपरि, जलोर्ध्वप्रदेश इत्यर्थः । भ्रमद्भिः=प्रसरद्भिः मदलोभादिति भावः । भ्रमरैः=द्विरेफैः । सलिलस्य=जलस्य, अन्तः=अभ्यन्तरे अन्तःसलिलम् । अन्तःसलिले प्रवेशः= गमनम्, इति अन्तःसलिलप्रवेशः । प्राक्=पूर्वम्, सूचितः=विज्ञापितः, अन्तःसलिलप्रवेशः यस्य सः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः । निःशेषेण=आधि-क्येन, धौतम्=प्रक्षालितम् इति निर्धौतम्, दानम्=मदः ययोः ते निर्धौतदाने, अत एव अमले=स्वच्छे इति निर्धौतदानामले, गण्डौ=कपोलौ एव भित्ती =प्रदेशौ इति गण्डभित्ती, निर्धौतदानामले गण्डभित्ती यस्य सः निर्धौत-

दानामलगण्डभित्तिः। वने=अरण्ये भवः वन्यः, गजः=हस्ती। सरित्तः=नर्मदानदीसकाशात्। उन्ममज्ज=उत्तस्थौ।

समा०—सलिलस्य अन्तः अन्तःसलिलम्, अन्तःसलिले प्रवेशः अन्तःसलिलप्रवेशः, प्राक् सूचितः, अन्तःसलिलप्रवेशः यस्य सः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः। निःशेषेण धौतम् निर्धौतम्, निर्धौतं दानं ययोः ते निर्धौतदाने, न विद्यते मलम् ययोः ते अमले, गण्डौ एव भित्ती गण्डभित्ती, निर्धौतदाने (अत एव) अमले गण्डभित्ती यस्य सः निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः, (प्रशस्तौ गण्डौ गण्डभित्ती। निर्धौतदाने अत एव अमले गण्डभित्ती यस्येति वा) गण्डयोः भित्तिः (प्रदेशः) गण्डभित्तिः निर्धौतदानेन अमला गण्डभित्तिः यस्य सः निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः-इति वा समासः।

अभि०—सेनानिवेशानन्तरमेव नर्मदाया जलादेको गज उत्थितो बभूव, स च वन्य आसीत्। एवं च तत्र मदगन्धलोभेनाकृष्टा भ्रमरा भ्रमन्ति स्म, येन तस्य जलाभ्यन्तरप्रवेशः सूच्यते स्म। जले मज्जनवशात्तस्य कपोलप्रदेशौ मलरहितावभूताम्।

हिन्दी—सेना का पड़ाव डाल देने पर नर्मदाके जलसे एक जंगली हाथी निकला। पानी के ऊपर मँडरानेवाले भौंरों से उसके डुबकी लगाये हुए का अनुमान हो रहा था, और उसके कपोल पानीसे धुलकर निर्मल हो गये थे ॥४३॥

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु।
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥४४॥

सञ्जीविनी—कथंभूतो गजः। निशेषविक्षालितधातुनाऽपि नीलाभिरूर्ध्वाभी रेखाभिस्तटाभिघातजनिताभिः शबलेन कर्बुरेण 'चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः। अश्मभिः पाषाणैर्विकुण्ठितेन कुण्ठीकृतेन दन्तद्वयेन ऋक्षवान्नाम कश्चित्तत्रत्यः पर्वतः, तस्य तटेषु वप्रक्रियां वप्रक्रीडाम्। उत्खातकेलिमित्यर्थः। 'उत्खातकेलिः शृङ्गाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते' इति शब्दार्णवः। शंसन्कथयन्। सूचयन्नित्यर्थः। युग्मम् ॥४४॥

अन्वयः—निःशेषविक्षालितधातुना, अपि नीलोर्ध्वरेखाशबलेन, अश्मविकुण्ठितेन, दन्तद्वयेन, ऋक्षवतः, तटेषु, वप्रक्रियां, शंसन् 'स बभौ'।

वाच्य०—तटेषु वप्रक्रियां शंसता तेन बभे।

व्याख्या—निःशेषम् = पूर्णतः यथा स्यात्तथा विक्षालितः = धौतः, इति निःशेषविक्षालितः, निःशेषविक्षालितः धातुः = गैरिकादिः येन तत् निःशेषविक्षालितधातु, तेन निःशेषविक्षालितधातुना अपि। ऊर्ध्वाः = उन्नताश्च ताः रेखाः-लेखाः इति ऊर्ध्वरेखाः, नीलाः = श्यामाश्च ताः ऊर्ध्वरेखाः इति नीलोर्ध्वरेखाः, नीलोर्ध्वरेखाभिः शबलम् = कर्बुरम् इति नीलोर्ध्वरेखाशबलम्, तेन नीलोर्ध्वरेखाशबलेन। अश्मभिः = पाषाणैः, विकुण्ठितम् = विकुण्ठीकृतम् इति अश्मविकुण्ठितम्, तेन अश्मविकुण्ठितेन। दन्तयोः = रदयोः द्वयम् = द्वितयं इति दन्तद्वयम्, तेन दन्तद्वयेन। ऋक्षाः = भल्लूकाः सन्ति अस्मिन् इति ऋक्षवान् तदाख्यः पर्वतविशेषः, तस्य ऋक्षवतः। तटेषु = तीरप्रदेशेषु, वप्रस्य क्रिया वप्रक्रिया = उत्खातकेलिः, ताम् = वप्रक्रीडाम्। शंसन् = सूचयन्। सः=गजः। बभौ = शुशुभे।

समा०—निःशेषम् विक्षालितः निःशेषविक्षालितः, निःशेषविक्षालितः धातुः येन तत् निःशेषविक्षालितधातु, तेन निःशेषविक्षालितधातुना। ऊर्ध्वाश्च ताः रेखा ऊर्ध्वरेखाः। नीलाश्च ताः ऊर्ध्वरेखाः नीलोर्ध्वरेखाः, नीलोर्ध्वरेखाभिः शबलम् इति नीलोर्ध्वरेखाशबलम्, तेन नीलोर्ध्वरेखाशबलेन। अश्मभिः विकुण्ठितम् इति अश्मविकुण्ठितम्, तेन अश्मविकुण्ठितेन। दन्तयोः द्वयं दन्तद्वयम्, तेन दन्तद्वयेन। ऋक्षाः सन्ति अस्मिन् इति ऋक्षवान्, तस्य ऋक्षवतः।

अभि०—तस्य गजस्य दन्तद्वयं, सलिलान्तर्निमज्जनेन गैरिकादिधातुप्रक्षालनेऽपि, ऋक्षवतो गिरेस्तटप्रदेशेषु कृतायां वप्रक्रीडायाम् 'उत्खातकेलिक्रीडायाम्' विलग्नाभिर्नीलोन्नतरेखाभिः, पाषाणेषु प्राप्तेन कुण्ठीभावेन च, वप्रक्रीडां सूचयच्छोभितमासीत्।

हिन्दी०—यद्यपि दाँतों का ऋक्षवान् गिरिके तट को उखाड़ने की क्रीड़ामें लगा गैरिकादि धातु नर्मदा के जल से अच्छी प्रकार धुल चुका था तथापि पाषाणों के प्रहार से पड़ जानेवाली गहरी नीली रेखाओं एवं टूटे हुए अग्रभागों से ही वह की गई वप्रक्रीडा को सूचित कर रहा था ॥४४॥

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम्
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥४५॥

सञ्जीविनी—संहारविक्षेपयोः संकोचनप्रसारणयोर्लघुक्रियेण क्षिप्रव्यापारेण 'लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्यमरः। हस्तेन शुण्डादण्डेन 'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करे-

भङ्करयोरपि' इति विश्वः । सशब्दं सघोषं बृहतस्तरङ्गान्भिन्दन्विदारयंस्तीराभिमुखः स गजः, वारी गजबन्धनस्थानम् 'वारी तु गजबन्धनी' इति यादवः । वार्या अर्गलाया विष्कम्भस्य भङ्गे भञ्जने प्रवृत्त इव बभौ ॥४५॥

अन्वयः—संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन, सशब्दम्, बृहतः, तरङ्गान्, भिन्दन्, तीराभिमुखः, सः वार्यर्गलाभङ्गे, प्रवृत्तः, इव, बभौ ।

वाच्य०—भिन्दता तीराभिमुखेन तेन वार्यर्गलाभङ्गे प्रवृत्तेन इव बभे ।

व्याख्या—संहारः = सङ्कोचः, च विक्षेपः = प्रसारणम्, च, संहारविक्षेपौ लघ्वी = अल्पीयसी, क्रिया = व्यापारः, यस्य सः लघुक्रियः । संहारविक्षेपयोः लघुक्रियः इति संहारविक्षेपलघुक्रियः, तेन संहारविक्षेपलघुक्रियेण । हस्तेन = शुण्डादण्डेन । सशब्दम् = ध्वनिसहितं यथा स्यात्तथा । बृहतः = विपुलान् । तरङ्गान्= वीचीः । भिन्दन् = विदारयन् । तीरस्य = तटस्य, अभिमुखः=संमुखः इति, तीराभिमुखः । स = गजः, वार्याः=गजबन्धन्याः, "वारी तु गजबन्धनी" इति यादवः । अर्गला = प्रतिबन्धः, इति वार्यर्गला, वार्यर्गलायाः भङ्गः = भञ्जनम्, इति वार्यर्गलाभङ्गः, तस्मिन् वार्यर्गलाभङ्गे । प्रवृत्तः = लग्नः । इव=यथा । बभौ=शुशुभे ।

समा०—संहारश्च विक्षेपश्च संहारविक्षेपौ संहारविक्षेपयोः लघ्वी क्रिया यस्य सः संहारविक्षेपलघुक्रियः । तेन संहारविक्षेपलघुक्रियेण । तीरस्य अभिमुखः तीराभिमुखः । वार्या अर्गला वार्यर्गला । वार्यर्गलायाः भङ्ग इति वार्यर्गलाभङ्गः । तस्मिन् वार्यर्गलाभङ्गे ।

अभि०—तीराभिगमनेच्छुः स गजः स्वीयशुण्डादण्डस्य संकोचेन प्रसारणेन च शब्दपूर्वकं तरङ्गान्विदारयन् गजबन्धनशृङ्खलाया भञ्जने लग्न इवाशोभत ।

हिन्दी—तट की ओर आता हुआ वह हाथी, अपनी सूँड को सिकोड़ते तथा फैलाते हुए शब्द के साथ तरङ्गों को छिन्न-भिन्न करता हुआ, बाँधने की शृङ्खला को तोड़ने में लगा हुआ सा जान पड़ता था ॥४५॥

शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात् ।
पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प ॥४६॥

सञ्जीविनी—शैलोपमः सः गजः शैवलमञ्जरीणां जालानि बृन्दान्युरसा कर्षन्पश्चात्तटमुत्ससर्प । पूर्वं तेन गजेनोत्पीडितो नुन्नो वारिराशिर्यस्य स सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प ॥४६॥

अन्वयः—शैलोपमः, सः, शैवलमञ्जरीणाम्, जालानि, उरसा, कर्षन्, पश्चात्, तटम्, उत्ससर्प, पूर्वम् तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहः, 'तटम्, उत्ससर्प' ।

वाच्य०—शैलोपमेन तेन कर्षता तटः पश्चात् उत्ससृपे, तदुत्पीडितवारिराशिना, सरित्प्रवाहेण, 'तटः पूर्वम् उत्ससृपे' ।

व्याख्या—शैलः=पर्वतः, उपमा=सादृश्यं यस्य सः शैलोपमः सः=गजः । शैवलानां=जलनीलीनां 'जलनीली तु शैवालं शैवलः' इत्यमरः । मञ्जर्यः= वल्लर्यः इति शैवलमञ्जर्यः, तासां शैवलमञ्जरीणाम् । जालानि=समूहान् । उरसा=वक्षःस्थलेन । कर्षन्=दूरे नयन् । पश्चात्=अनन्तरं । तटं=तीरं । उत्ससर्प=प्राप्तः । पूर्वं=प्राक् । तेन=गजेन, उत्पीडितः=नुन्नः इति तदुत्पीडितः, वारीणां=जलानां राशिः=समूहः इति वारिराशिः, तदुत्पीडितः वारिराशिः यस्य सः तदुत्पीडितवारिराशिः । सरितः=नद्याः, प्रवाहः=जलाविच्छिन्नगतिः । तटं= तीरं, उत्ससर्प=प्राप्तः ।

समा०—शैलः उपमा यस्य सः शैलोपमः । शैवलानां मञ्जर्यः शैवलमञ्जर्यः, तासां शैवलमञ्जरीणाम् । तेन उत्पीडितः तदुत्पीडितः, वारीणाम् राशिः वारिराशिः, तदुत्पीडितः वारिराशिः यस्य सः तदुत्पीडितवारिराशिः । सरितः प्रवाहः सरित्प्रवाहः ।

अभि०—पर्वताकारेण तेन गजेन शैवलमञ्जरीणां समूहान् स्ववक्षःस्थलेनाकर्षता पश्चात्तट आप्तः । तत्क्षुभिततरङ्गो जलप्रवाहस्तु पूर्वमेव तटमाप्तवान् ।

हिन्दी—पर्वताकार वह हाथी सेवार की लताओं को अपने वक्षःस्थल से खींचता हुआ ~~करता हुआ~~, पीछे तटपर पहुँचा और उससे पूर्व ही उसके चलने से क्षुभित तरङ्गवाला नर्मदा का प्रवाह तटपर पहुँच गया ॥ ४६ ॥

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता ।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः ॥ ४७ ॥

सञ्जीविनी—तस्यैकनागस्यैकाकिनो गजस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहेन क्षणमात्रं शान्ता निवृत्ता मददुर्दिनश्रीर्मदवर्षलक्ष्मीर्वन्येतरेषां ग्राम्याणामनेकपानां द्विपानां दर्शनेन पुनर्दिदीपे ववृधे ॥ ४७ ॥

अन्वयः—तस्य, एकनागस्य, कपोलभित्त्योः जलावगाहक्षणमात्रशान्ता मददुर्दिनश्रीः वन्येतरानेकपदर्शनेन, पुनः दिदीपे ।

वाच्य०—जलावगाहक्षणमात्रशान्तया मददुर्दिनश्रिया पुनः दिदीपे ।

व्याख्या—तस्य=पूर्वोक्तस्य । एकः=मुख्यश्चासौ नागः गजः इति एकनागः, तस्य एकनागस्य । कपोलौ=गण्डस्थलौ एव भित्ती=प्रदेशौ इति कपोलभित्ती, तयोः कपोलभित्त्योः । जले=सलिले, अवगाहः=मज्जनम् जलावगाहः, क्षणः= मुहूर्तम् एव क्षणमात्रम्, क्षणमात्रं शान्ता=निवृत्ता इति क्षणमात्रशान्ता, जलावगाहेन क्षणमात्रशान्ता इति जलावगाहक्षणमात्रशान्ता । मदस्य=दानस्य, दुर्दिनम्=वर्षणम् इति मददुर्दिनम्, मददुर्दिनस्य श्रीः=शोभा इति मददुर्दिनश्रीः । वने=विपिने भवा वन्याः, वन्या इतरे=अन्ये येषां ते वन्येतराः, अनेकाभ्याम्= मुखशुण्डाभ्याम् पिबन्ति=पानं कुर्वन्ति इति अनेकपाः गजाः इत्यर्थः, वन्येतराश्च ते अनेकपाः इति वन्येतरानेकपाः, वन्येतरानेकपानाम् दर्शनम्=अवलोकनम् इति वन्येतरानेकपदर्शनम्, तेन वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनः=भूयः दिदीपे=ववृधे ।

समा०—एकश्चासौ नागः इति एकनागः, तस्य एकनागस्य । कपोलौ एव भित्ती इति कपोलभित्ती, तयोः कपोलभित्त्योः । जले अवगाहः जलावगाहः, क्षण एव क्षणमात्रम्, क्षणमात्रं शान्ता इति क्षणमात्रशान्ता, जलावगाहेन क्षणमात्रशान्ता इति जलावगाहक्षणमात्रशान्ता । दुष्टं दिनम् दुर्दिनम्, मदस्य दुर्दिनम् मददुर्दिनम्, मददुर्दिनस्य श्रीः इति मददुर्दिनश्रीः । वने भवाः वन्याः, वन्याः इतरे येषां ते वन्येतराः, अनेकाभ्यां पिबन्ति इति अनेकपाः, वन्येतराश्च ते अनेकपाः इति वन्येतरानेकपाः, वन्येतरानेकपानाम् दर्शनम् इति वन्येतरानेकपदर्शनम्, तेन वन्येतरानेकपदर्शनेन ।

अभि०—यन्मदजलवर्षणम् नर्मदा सलिलमज्जनेन तस्य गजस्य मुहूर्तमात्रं शान्तमभूत् तदेवाजसेनागजावलोकनेन पुनरुत्पन्नं बभूव ।

हिन्दी—उस हाथी के गण्डस्थलों से जो मद टपक रहा था वह नर्मदा के जल में डुबकी लगाने से एक क्षण के लिये बन्द हो गया था, किन्तु अज की सेना के हाथियों को देखते ही पुनः बरसने लगा ॥ ४७ ॥

> सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम् ।
> विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः ॥ ४८ ॥

सञ्जीविनी—सप्तच्छदस्य वृक्षविशेषस्य क्षीरवत्कटुः सुरभिः प्रवाहः प्रवा- यस्य तम् । कटुतिक्तकषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः इति यादवः । अ-

तदीयं मदमाघ्राय सेनागजेन्द्राः विलङ्घितः तिरस्कृत आधोरणानां हस्तिपकानां तीव्रो महान्यत्नो यैस्ते तथोक्ताः सन्तः, 'आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः' इत्यमरः। विमुखाः पराङ्मुखाः बभूवुः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहम्, 'अत एव' असह्यम्, तदीयम्, मदम्, आघ्राय, सेनागजेन्द्राः, विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः, 'सन्तः' विमुखाः, बभूवुः।

वाच्य०—सेनागजेन्द्रैः विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नैः 'सद्भिः' विमुखैः बभूवे।

व्याख्या—सप्त=सप्तसंख्यकाः छदाः=पत्राणि यस्य सः सप्तच्छदः, सप्तपर्णवृक्षः इत्यर्थः, सप्तच्छदस्य क्षीरम्=दुग्धम् सप्तच्छदक्षीरम्, सप्तच्छदक्षीरवत् कटुः= सुरभिः, प्रवाहः=प्रसारः यस्य सः सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहः, तम् सप्तच्छदक्षीरकटु-प्रवाहम्। 'अत एव' सोढुम्=सहनं कर्तुम् शक्यः सह्यः, न सह्यः असह्यः, तम्। तस्य=गजस्य अयम् तदीयः, तम् तदीयम्। मदम्=दानम्। आघ्राय=घ्रात्वा। गजानाम्=हस्तिनाम्, इन्द्राः=स्वामिनः गजेन्द्राः, सेनायाः=चम्वाः गजेन्द्राः सेना-गजेन्द्राः। तीव्रः=अधिकश्चासौ, यत्नः=उपायः इति तीव्रयत्नः, आधोरणानाम्= हस्तिपकानाम् तीव्रयत्नः इति आधोरणतीव्रयत्नः, विलङ्घितः=तिरस्कृतः आधोरण-तीव्रयत्नः यैस्ते विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः, 'सन्तः'। विपरीतम्=विरुद्धम् मुखम् येषां ते विमुखाः पराङ्मुखा इत्यर्थः। बभूवुः=आसन्।

समा०—सप्त छदा यस्य सः सप्तच्छदः, सप्तच्छदस्य क्षीरं सप्तच्छदक्षीरम्, सप्तच्छदक्षीरवत्कटुः प्रवाहः यस्य सः सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहः, तं सप्तच्छदक्षीरकटु-प्रवाहम्। सोढुं शक्यः सह्यः, न सह्यः असह्यः तम्। गजानाम् इन्द्राः गजेन्द्राः सेनायाः गजेन्द्राः सेनागजेन्द्राः। तीव्रश्चासौ यत्नः तीव्रयत्नः, आधोरणानां तीव्र-यत्नः इति आधोरणतीव्रयत्नः, विलङ्घितः आधोरणतीव्रयत्नः यैस्ते विलङ्घिता-धोरणतीव्रयत्नाः।

अभि०—अजसेनागजेन्द्रैर्यदा सप्तपर्णदुग्धसमस्तस्य गजस्य मदगन्ध आघ्रायि तदैव तमसहमानास्ते तथा दुद्रुवुर्यथा तदाधोरणानामुपाया अपि तान्नि-रोद्धुं न शेकुः।

हिन्दी—अज की सेना के बड़े-बड़े हाथी भी सप्तपर्ण के समान गन्धवाले उस हाथी के मद को सूँघकर उसे सहन न करते हुए भागने लगे, यहाँ तक कि हाथीवानों के उग्र उपाय भी उन्हें न रोक सके ॥४८॥

स च्छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ॥४९॥

सञ्जीविनी—स गजः छिन्ना बन्धा यैस्ते छिन्नबन्धाः द्रुताः पलायिताः युगं वहन्तीति युग्या वाहा यस्मिन्सः स चासौ शून्यश्च तम्। भग्ना अक्षा रथावयवदारुविशेषाः 'अक्षो रथस्यावयवे पाशकेऽप्यक्षमिन्द्रियम्' इति शाश्वतः येषां ते भग्नाक्षा अत एव पर्यस्ताः पतिता रथा यस्मिंस्तम्। रामाणां स्त्रीणां परित्राणे संरक्षणे विहस्ता व्याकुलाः 'विहस्तव्याकुलौ समौ' इत्यमरः। योधा यस्मिंस्तं सेनानिवेशं शिविरं क्षणेन तुमुलं चकार ॥४६॥

अन्वयः—सः, छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यम्, भग्नाक्षपर्यस्तरथम्, रामापरित्राणविहस्तयोधम्, सेनानिवेशम्, क्षणेन, तुमुलम्, चकार।

वाच्य०—तेन छिन्नबन्धुद्रुतयुग्यशून्यः भग्नाक्षपर्यस्तरथः रामापरित्राणविहस्तयोधः सेनानिवेशः क्षणेन तुमुलः चक्रे।

व्याख्या—सः=नर्मदाजलोद्गतो गजः। युगम्=धुरम् वहन्ति इति युग्याः, छिन्नाः=त्रुटिताः बन्धाः=बन्धनानि यैस्ते छिन्नबन्धाः, छिन्नबन्धाश्च ते द्रुताः=पलायिताः युग्याः यस्मिन् सः छिन्नबन्धद्रुतयुग्यः, स चासौ शून्यश्च इति छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यः, तम्। भग्नाः=त्रुटिताः, अक्षाः=कीलकानि येषां ते भग्नाक्षाः, अत एव पर्यस्ताः=पतिताः, रथाः=स्यन्दनाः यस्मिन् सः भग्नाक्षपर्यस्तरथः, तम् भग्नाक्षपर्यस्तरथम्। रामाणाम्=स्त्रीणाम् परित्राणं=संरक्षणम् इति रामापरित्राणं, रामापरित्राणे विहस्ताः=व्याकुलाः, योधाः=भटाः यस्मिन् सः रामापरित्राणविहस्तयोधः, तम् परित्राणविहस्तयोधम्। सेनायाः=चम्वाः निवेशः=शिविरः इति सेनानिवेशः, त सेनानिवेशम्। क्षणेन=क्षणमात्रेणैव। तुमुलम् = व्याकुलम्, चकार=अकरोत्।

समा०—युगं वहन्तीति युग्याः, छिन्नाः बन्धाः यैस्ते छिन्नबन्धाः, छिन्नबन्धाश्च ते द्रुताः इति छिन्नबन्धद्रुताः, छिन्नबन्धद्रुताः युग्याः यस्मिन् सः छिन्नबन्धद्रुतयुग्यः, छिन्नबन्धद्रुतयुग्यश्चासौ शून्यः इति छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यः, तम् छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यम्। भग्नाः अक्षाः येषां ते भग्नाक्षाः, भग्नाक्षाश्च पर्यस्ताश्च रथाः यस्मिन् सः भग्नाक्षपर्यस्तरथः, तं भग्नाक्षपर्यस्तरथम्। रामाणां परित्राणं इति रामापरित्राणम्। रामापरित्राणे विहस्ताः योधाः यस्मिन् सः रामापरित्राण-

विहस्तयोधः, तं रामापरित्राणविहस्तयोधम् । सेनायाः निवेशः इति सेनानिवेशः, तम् सेनानिवेशम् ।

अभि०—स सेनानिवेशस्तस्मिन्गजे आगतमात्र एव व्याकुलो जातः । तथाहि बन्धनानि भङ्क्त्वा वाहना दुद्रुवुः, भग्नाक्षा रथाः पेतुः, योधाश्च स्त्रीणां संरक्षणे व्याकुला बभूवुः ।

हिन्दी—अज की सेना का वह समस्त शिविर उस हाथी के आते ही व्याकुल हो गया, क्योंकि हाथी घोड़े आदि बन्धन तोड़कर भागने लगे, धुरा टूटने से रथ गिरने लगे तथा योधा लोग स्त्रियों की रक्षा में तत्पर हो गये ॥४९॥

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो बन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः ।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ॥५०॥

सञ्जीविनी—नृपते राज्ञो वन्यः करयवध्य इति श्रुतवाञ्छास्त्राज्ज्ञातवान्कुमार आपतन्तमभिधावन्तं तं गजं निवर्तयिष्यन्न तु प्रहरिष्यन् अत एव नात्यायतमनतिदीर्घं यथा स्यात्, नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः, कृष्टशार्ङ्गः ईषदाकृष्टचापः सन्विशिखेन बाणेन कुम्भे जघान । अत्र चाक्षुषः—'लक्ष्मीकामो युद्धादन्यत्र करिवधं न कुर्यात् । इयं हि श्रीर्यै करिणः' इति । अत एव 'युद्धादन्यत्र' इति द्योतनार्थमेव वन्यग्रहणं कृतम् ॥५०॥

अन्वयः—नृपतेः, वन्यः, करी, अवध्यः, इति, श्रुतवान्, कुमारः, आपतन्तं, तम्, निवर्तयिष्यन्, 'अत एव' नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः, 'सन्' विशिखेन, कुम्भे जघान।

वाच्य०—इति श्रुतवता तं निवर्तयिष्यता नात्यायतकृष्टशार्ङ्गेण 'सता' जघ्ने ।

व्याख्या—नृणां=मनुष्याणां पतिः=स्वामी नृपतिः=राजा, तस्य नृपतेः । वने=अरण्ये भवः वन्यः । करः=शुण्डादण्डः अस्य अस्ति इति करी=गजः । हन्तुम्=मारयितुम् योग्यः वध्यः, न=नहि वध्यः अवध्यः । इति=इत्थम् । श्रुतवान्=ज्ञातवान् । कुमारः=युवराजः अजः । आ=समन्तात्, पतति=गच्छति इति आपतन्, तम् आपन्तम् आयान्तमित्यर्थः । तम् गजम् । निवर्तयिष्यति=निराकरिष्यति इति निवर्तयिष्यन् । 'अत एव' शृङ्गस्य=विषाणस्य, विकारः शार्ङ्गम्=धनुः । न=नहि, अत्यायतम्=अतिदीर्घम् इतिं नात्यायतम्, नात्यायतं च तत् कृष्टम्=आकृष्टम् इति नात्यायतकृष्टम् तत च शार्ङ्गम्=येन सः, नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः 'सन्' विशिखेन=बाणेन । कुम्भे=गण्डस्थले । जघान=हतवान् ।

समा०—नृणां पतिः नृपतिः, तस्य नृपतेः। हन्तुं योग्यः वध्यः, न वध्यः अवध्यः। न आत्यायतं नात्यायतं, नात्यायतं कृष्टं शार्ङ्गं येन सः नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः।

अभि०—राज्ञा वन्यो गजो न हन्तव्य इति ज्ञातवता युवराजेनाजेन केवलं तस्य पराङ्मुखीकरणेच्छया धनुरनतिदूरमाकृष्य गण्डस्थलोपरि बाणो मुक्तः।

हिन्दी—राजा को जंगली हाथी नहीं मारना चाहिये यह जाननेवाले कुमार अज ने केवल उसको दूर भगाने की इच्छा से धनुष को थोड़ा खींचकर गण्डस्थल के ऊपर एक बाण छोड़ा ॥ ५० ॥

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्टः।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे ॥ ५१ ॥

सञ्जीविनी—स गजो विद्धमात्रस्ताडितमात्रः किल न तु प्रहतस्तथापि नागरूपं गजशरीरमुत्सृज्य तेन वृत्तान्तेन विस्मितैस्तद्विस्मितैः सैन्यैर्दृष्टः सन् स्फुरतः प्रभामण्डलस्य मध्यवर्ति कान्तं मनोहरं व्योमचरं वपुः प्रपेदे प्राप ॥ ५१ ॥

अन्वयः—सः विद्धमात्रः किल नागरूपं, उत्सृज्य, तद्विस्मितसैन्यदृष्टः, सन्' स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति, कान्तम्, वपुः प्रपेदे।

वाच्य०—तेन विद्धमात्रेण तद्विस्मितसैन्यदृष्टेन, 'सता' वपुः, प्रपेदे।

व्याख्या—सः=गजः, विद्धः = ताडितः एव विद्धमात्रः किल = इति वार्त्तायाम्। नागस्य = गजस्य रूपम् आकृतिः इति नागरूपम्, तत् उत्सृज्य = परित्यज्य सेना = चमूः एव सैन्यं, विस्मितं = चकितं च तत् सैन्यम् विस्मितसैन्यम्, तस्य= अजस्य विस्मितसैन्यम् तद्विस्मितसैन्यम्, तद्विस्मितसैन्येन दृष्टः = अवलोकितः इति तद्विस्मितसैन्यदृष्टः सन्। प्रभायाः = दीप्तेः, मण्डलम् = चक्रम् इति प्रभामण्डलं, स्फुरत् = प्रकाशमानं च तत् प्रभामण्डलं इति स्फुरत्प्रभामण्डलम्, तस्य मध्यम्= मध्यभागः इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यम्, तस्मिन् वर्तते = तिष्ठति इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति। कान्तम् = मनोहरम्। व्योम्नि = आकाशे चरति = गच्छति इति व्योमचरम्, तत्। वपुः = शरीरम्, प्रपेदे = प्राप।

समा०—विद्धः एव विद्धमात्रः। नागस्य रूपं इति नागरूपं, तत् नागरूपम्। सेना एव सैन्यम्, विस्मितं च तत् सैन्यं इति विस्मितसैन्यम्, तस्य विस्मितसैन्यम् इति तद्विस्मितसैन्यम्, तद्विस्मितसैन्येन दृष्टः इति तद्विस्मितसैन्यदृष्टः। प्रभायाः मण्डलं प्रभामण्डलम्, स्फुरत् च तत् प्रभामण्डलम् इति स्फुरत्प्रभामण्ड-

लम्, स्फुरत्प्रभामण्डलस्य मध्यम् इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यम्, स्फुरत्प्रभामण्डलमध्ये वर्तते इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति। व्योम्नि चरति इति व्योमचरम्, तत् व्योमचरम्।

अभि०—यथैवाजबाणेन स विद्धस्तथैव तेन गजरूपं परित्यक्तम्, प्रकाशमानदीप्तिचक्रान्तराले वर्तमाना गगनविहारिणी चेतोहराऽऽकृतिश्च प्राप्ता। विस्मयवन्तस्तत्सैनिकास्तं ददृशुः।

हिन्दी—अज के बाण से विद्ध होते ही उसने हाथी का शरीर छोड़ दिया, और प्रकाशमान दीप्तिपुञ्ज में स्थित आकाशचारिणी मनोहर आकृति प्राप्त की। अज के सैनिक उसे आश्चर्ययुक्त होकर देखने लगे ॥५१॥

अथ प्रभावोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः।
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः ॥५२॥

सञ्जीविनी—अथ प्रभावेनोपनतैः प्राप्तैः कल्पद्रुमोत्थैः कल्पवृक्षोत्पन्नैः पुष्पैः कुमारमजमवकीर्याभिवृष्य दशनप्रभाभिर्दन्तकान्तिभिः संवर्धिता उरःस्थले ये तारहाराः स्थूला मुक्ताहारास्ते येन स तथोक्तः। वाचोऽस्य सन्तीति वाग्मी वक्ता। 'वाचो ग्मिनिः' इति ग्मिनिप्रत्ययः। पुरुष उवाच ॥५२॥

अन्वयः—अथ, प्रभावोपनतैः, कल्पद्रुमोत्थैः पुष्पैः, कुमारम्, अवकीर्य, दशनप्रभाभिः, संवर्धितोरःस्थलतारहारः, 'सः पुरुषः' उवाच।

वाच्य०—कुमारः संवर्धितोरस्थलताहारेण वाग्मिना 'तेन पुरुषेण' ऊचे।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्। प्रभावेन = सामर्थ्येन, उपनतानि = प्राप्तानि इति प्रभावोपनतानि, तैः प्रभावोपनतैः। कल्पद्रुमात् = कल्पवृक्षात्, उत्थानि उत्पन्नानि इति कल्पद्रुमोत्थानि, तैः कल्पद्रुमोत्थैः। पुष्पैः = कुसुमैः। कुमारम्= युवराजम् अजम्। अवकीर्य = अभिवृष्य। दशनानाम् = दन्तानाम्, प्रभाः= कान्तयः इति दशनप्रभाः, ताभिः दशनप्रभाभिः। ताराणाम् = मुक्तानां हाराः इति तारहाराः, उरसः = हृदयस्य, स्थलम् = प्रदेशः इति उरःस्थलम्, उरःस्थले तारहाराः इति उरःस्थलतारहाराः, संवर्धिताः = समेधिताः उरःस्थलतारहाराः येन सः संवर्धितोरःस्थलतारहारः। प्रशस्ता वाक् = वाणी अस्य अस्ति इति वाग्मी = वाक्चातुरीकुशलः, 'सः पुरुषः' उवाच = जगाद।

समा०—प्रभावेनोपनतानि इति प्रभावोपनतानि, तैः प्रभावोपनतैः। कल्प-

द्रुमात् उत्थानि इति कल्पद्रुमोत्थानि, तैः कल्पद्रुमोत्थैः दशनानाम् प्रभाः इति दशनप्रभाः, ताभिः दशनप्रभाभिः। ताराणां हाराः इति तारहाराः, उरसः स्थलम् इति उरःस्थलम्, उरस्थले तारहाराः इति उरःस्थलतारहाराः, संवर्धिताः उरःस्थलतारहाराः येन सः संवर्धितोरःस्थलतारहारः। प्रशस्ता वाक् अस्य अस्ति इति वाग्मी।

अभि०—अनन्तरं च तेन वाक्पटुना स्वप्रभावात्कल्पवृक्षकुसुमान्यानीयाजोपरि तानि वर्षता वक्षःस्थले स्थितं हारं स्वकीयदन्तकान्तिभिर्वर्धयता कथितम्।

हिन्दी—तब उसने अपने प्रभाव से प्राप्त किये कल्पवृक्ष के पुष्पों की, अज के ऊपर वर्षा करते हुए दन्तकान्ति से हृदय पर लटकते हुए हार को और भी उन्नत सा बनाकर इस प्रकार कहा ॥५२॥

मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम्।
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य ॥५३॥

सञ्जीविनी—अवलेपमूलाद् गर्वहेतुकात् 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति विश्वः। मतङ्गस्य मुनेः शापान्मतङ्गजत्वमवाप्तवानस्मि। मां प्रियदर्शनस्य प्रियदर्शनाख्यस्य गन्धर्वपतेर्गन्धर्वराजस्य तनूजं पुत्रम्। 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इत्यमरः। 'तन्वादेर्वा' इत्यूङिति केचित्। प्रियंवदं प्रियंवदाख्यमवेहि जानीहि। प्रियं वदतीति प्रियंवदः 'प्रियवशे वदः खच्' इति खच्प्रत्ययः ॥५३॥

अन्वय०—अवलेपमूलात्, मतङ्गशापात्, मतंगजत्वम्, अवाप्तवान्, अस्मि। मां, प्रियदर्शनस्य, गन्धर्वपतेः, तनूजं, प्रियंवदम्, अवेहि।

वाच्य—मतंगजत्वमवाप्तवता मया भूयते, अहं गन्धर्वपतेस्तनूजः प्रियंवदः "त्वया" अवेयै।

व्याख्या—अवलेपः=गर्वः, एव मूलं = कारणं यस्य सः अवलेपमूलस्तस्मात् अवलेपमूलात् अहंकारादित्यर्थः। मतंगस्य=मतंगनामकर्षेः, शापः=आक्रोशः इति मतंगशापस्तस्मात् मतंगशापात् 'शप आक्रोशे'। मतंगात् जातः मतंगजः, मतंगजस्य भावः मतंगजत्वं = हस्तित्वं = हस्तिशरीरम्। अवाप्तवान् = प्राप्तवान् अस्मि= अहम्। मां = पुरःस्थितम्। प्रियं = मनोहरं दर्शनम् = अवलोकनं यस्य, तस्य प्रियदर्शनस्य = एतन्नामकस्य। गन्धर्वाणां = देवगायकानां = विश्वावसुप्रभृतीनामित्यर्थः पतिः = स्वामी, तस्य गन्धर्वपतेः = गन्धर्वराजस्येत्यर्थः। तनोः

=शरीरात्, जातम्=उत्पन्नमिति तनूजं=पुत्रम्। प्रियंवदतीति प्रियंवदस्तं प्रियंवदं=प्रियंवदनामानम्। अवेहि=जानीहि, विद्धि।

समा०—अवलेपः मूलं यस्य सः, तस्मात् अवलेपमूलात्। मतंगस्य शापस्तस्मात् मतंगशापात्। मतङ्गाज्जातः मतंगजः, मतंगजस्य भावः मतंगजत्वम्, तत्। प्रियं दर्शनं यस्य स प्रियदर्शनस्तस्य प्रियदर्शनस्य। गन्धर्वाणां पतिः गन्धर्वपतिस्तस्य गन्धर्वपतेः। तनोः जातः तनूजस्तं तनूजम्। प्रियंवदतीति प्रियंवदस्तं प्रियंवदम्।

अभि०—मदहंकारेण प्राप्तात् मतंगमहर्षिशापात् गजभावं गतं प्रियदर्शननामकगन्धर्वराजस्य पुत्रं प्रियंवदनामकं मां विद्धि।

हिन्दी—एक बार मेरे अहंकार के कारण महर्षि मतङ्ग ने मुझे शाप दे दिया था, मैं हाथी हो गया, "वस्तुतः" मैं गन्धर्वों के राजा प्रियदर्शन का लड़का प्रियंवद हूँ, ऐसा जानो ॥५३॥

स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥५४॥

सञ्जीविनी—स महर्षिश्च प्रणतेन मयाऽनुनीतः सन्पश्चान्मृदुतां शान्तिमगच्छत्। तथाहि। जलस्योष्णत्वमग्नेरातपस्य वा संप्रयोगात्संपर्कात् न तु प्रकृत्योष्णत्वम्। यच्छैत्यं सा प्रकृतिः स्वभावः। विधेयप्राधान्यात्सेति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः। महर्षीणां शान्तिरेव स्वभावो न क्रोध इत्यर्थः ॥५४॥

अन्वयः—सः महर्षिः, च, प्रणतेन, मया, अनुनीतः, "सन्" पश्चात्, मृदुताम्, अगच्छत्, हि, जलस्य, उष्णत्वम्, अग्न्यातपसंप्रयोगात्, यत्, शैत्यं, सा, प्रकृतिः।

वाच्य०—तेन महर्षिणा च मयाऽनुनीतेन "सता" पश्चात् मृदुताऽगम्यत, हि जलस्य उष्णत्वेन अग्न्यातपसम्प्रयोगात् "भूयते" येन शैत्येन "भूयते" तया प्रकृत्या "भूयते"।

व्याख्या—सः पूर्वोक्तः महांश्चासौ ऋषिः महर्षिः=मतंगमुनिः। चः=समुच्चये, प्रणतेन=चरणयोर्निपत्य प्रणमता, मया=प्रियंवदेन। अनुनीतः=प्रार्थितः "सन्" पश्चात्=प्रार्थनानन्तरं मृदोर्भावः मृदुता, तां मृदुतां=कोमलतां=शान्तिमित्यर्थः, अगच्छत्=अव्रजत्। हिं=यतः, जलस्य=सलिलस्य 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्' इत्यमरः। उष्णस्य भाव उष्णत्वं=तप्तत्वम् 'उष्ण ऊष्मागमस्तपः' इत्यमरः। अशीतलत्वमित्यर्थः। अग्निः=वह्निश्च

आतपः=घर्मश्चेति अग्न्यातपौ, तयोः सम्प्रयोगः=संयोगः इति अग्न्यातपसम्प्रयोगस्तस्मात् तथोक्तम् 'जायते' इति शेषः। नतु स्वभावेन जलस्योष्णतेति भावः। यत्=प्रसिद्धं। शीतस्य भावः शैत्यं=शीतलत्वम्। सा प्रसिद्धा शैत्यरूपा। प्रकृतिः=स्वभावः, अस्तीति शेषः।

समा०—महांश्चासौ ऋषिरिति महर्षिः। मृदोर्भावः मृदुता, तां मृदुताम्। उष्णस्य भाव उष्णत्वम्, अग्निश्चातपश्चेति अग्न्यातपौ, तयोः संप्रयोग इति अग्न्यातपसंप्रयोगस्तस्मात् अग्न्यातपसम्प्रयोगात्। शीतस्य भावः शैत्यम्।

अभि०—मदहंकरात् कुपितः स महर्षिः बहुविधप्रार्थनया प्रणामाञ्जलिना च पश्चात् शान्ति गतः मयि कृपामकरोत्। यतो हि अग्निसूर्यसंयोगादेव जलस्योष्णता भवति शीतलत्वं तु तस्य स्वभावः यथा, तथैव महर्षीणां शान्तिरेव स्वभावः, क्रोधस्तु कारणवशादेव।

हिन्दी—मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर (हाथ पाँव जोड़ने पर) वह महर्षि शान्त हो गए, क्योंकि जल तो अग्नि या सूर्य की गर्मी पाकर गर्म होता है और उसका अपना स्वभाव तो शीतल होता है, ऐसे ही महर्षियों का स्वभाव तो शान्त ही होता है, क्रोध तो किसी बाहरी कारण से होता है ॥५४॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम् ॥५५॥

सञ्जीविनी—इक्ष्वाकुवंशः प्रभवो यस्य सोऽजो यदा ते कुम्भमयोमुखेन लोहाग्रेण शरेण भेत्स्यति विदारयिष्यति तदा स्वेन वपुषो महिम्ना पुनः संयोक्ष्यसे संगंस्यस इति स तपोनिधिर्मामवोचत् ॥५५॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंशप्रभवः अजः, यदा, ते, कुम्भम्, अयोमुखेन, शरेण, भेत्स्यति, तदा, स्वेन, वपुर्महिम्ना, पुनः, संयोक्ष्यसे, इति, सः, तपोनिधिः, माम्, अवोचत् ।

वाच्य०—इक्ष्वाकुवंशप्रभवेणाजेन कुम्भो भेत्स्यते तदा स्वेन वपुर्महिम्ना पुनस्त्वया संयोक्ष्यते इति तेन तपोनिधिनाऽहमवोचिषि।

व्याख्या—इक्ष्वाकोः=इक्ष्वाकुराजर्षेः, वंशः=कुलम् इति इक्ष्वाकुवंशः, इक्ष्वाकुवंशः प्रभवः=कारणं यस्येति, इक्ष्वाकुवंशप्रभवः। अजः अजनामा रघुपुत्रः, यदा=यस्मिन् काले। ते तव=हस्तिशरीरस्य प्रियंवदस्येत्यर्थः। कुम्भं=मस्त-

कम्, अयः=लोहः, मुखे–'लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी' इत्यमरः, फलके यस्य सः तेन अयोमुखेन शरेण=बाणेन, भेत्स्यति=विदारयिष्यति। तदा=तस्मिन् काले। स्वेन=आत्मीयेन। वपुषः=शरीरस्य, महिमा=महत्त्वम्। सामर्थ्यमित्यर्थः। तेन वपुर्महिम्ना। पुनः भूयः। संयोक्ष्यसे संगंस्यसे, शरीरं प्राप्स्यसीत्यर्थः। त्वमिति शेषः, इति=इत्थं, स=पूर्वोक्तः, तपसां निधिः=निधानमिति तपोनिधिः, माम् = प्रियंवदम्, अवोचत्=उक्तवान्।

समा०—इक्ष्वाकोः वंश इति इक्ष्वाकुवंशः, इक्ष्वाकुवंशः प्रभवो यस्य स इक्ष्वाकुवंशप्रभवः। अयो मुखे यस्य सः, तेन अयोमुखेन। वपुषो महिमा तेन वपुर्महिम्ना। तपसां निधिरिति तपोनिधिः।

अभि०—विनम्रस्य मे प्रार्थनया प्रसन्नो मतंगमुनिः सूर्यवंश्यो रघुपुत्रोऽजो यदा लोहशरेण तव मस्तकं भेत्स्यति तदा त्वं पुनः गन्धर्वरूपं प्राप्स्यसीति मामकथयत्।

हिन्दी—मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर उस तपस्वी मतंग ऋषि ने मुझसे कहा कि इक्ष्वाकुराजर्षि के कुल में उत्पन्न अज जब तुम्हारे मस्तक को लोहे के फलवाले बाण से भेदन करेगा, तब तुम फिर से अपना असली शरीर प्राप्त करोगे ॥५५॥

संमोचितः सत्त्ववता त्वयाऽहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः ॥ ५६ ॥

सञ्जीविनी—चिरं प्रार्थितं दर्शनं यस्य तेन सत्त्ववता बलवता त्वयाऽहं शापात्संमोचितः मोक्षं प्रापितः। भवतः प्रतिप्रियं प्रत्युपकारं न कुर्यां चेन्मे स्वपदोपलब्धिः स्वस्थानप्राप्तिः 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः। वृथा स्याद्धि। तदुक्तम्—'प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम्' इति ॥ ५६ ॥

अन्वयः—चिरप्रार्थितदर्शनेन, सत्त्ववता, त्वया, अहं, शापात् सम्मोचितः भवतः प्रतिप्रियं, न, कुर्यां, चेत्, मे स्वपदोपलब्धिः वृथा स्यात्।

वाच्य०—चिरप्रार्थितदर्शनः सत्त्ववांस्त्वं मां शापात् संमोचितवान्। भवतः प्रतिप्रियं न मया क्रियेत चेन्मे स्वपदोपलब्ध्या वृथा भूयेत हि।

व्याख्या—चिरं=बहुकालात् प्रार्थितं=वाञ्छितमभिलषितमित्यर्थः। दर्शनम्=अवलोकनं यस्य सः, तेन चिरप्रार्थितदर्शनेन, सत्त्वं=बलमस्ति अस्यासौ सत्त्ववान्, तेन सत्त्ववता। त्वया=भवता अजेनेत्यर्थः। अहं=प्रियंवदः शापात्=

आक्रोशात्, सम्मोचितः=मुक्तिं प्रापितः। भवतः=अजस्य। प्रतिप्रियं=प्रत्युपकारं न=नहि कुर्यां=सम्पादयेयं चेत्=यदि 'तर्हि' मे=मम प्रियंवदस्येत्यर्थः। स्वस्य=निजस्य, पदं=स्थानं, तस्य उपलब्धिः=प्राप्तिः इति स्वपदोपलब्धिः। वृथा=व्यर्था स्यात्=भवेद्। हि = निश्चये।

समा०—चिरं प्रार्थितं दर्शनं यस्य सः, तेन चिरप्रार्थितदर्शनेन। सत्त्वमस्यास्तीति सत्त्ववान्, तेन सत्त्ववता। सम्यङ् मोचितः सम्मोचितः। स्वस्य पदं स्वपदं, स्वपदस्य उपलब्धिः स्वपदोपलब्धिः।

अभि०—बहोः कालात् प्रार्थितदर्शनेन बलवता भवता मे गजशरीरतो मोक्षः कारितः। अतो यद्यहं ते प्रत्युपकारं न कुर्यां तर्हि मे गन्धर्वलोकप्राप्तिः गजयोनितो मोक्षश्च व्यर्थः भवेदिति प्रत्युपकारं चिकीर्षुरस्मि।

हिन्दी—मतंग ऋषि के शाप से गजयोनि को प्राप्त होकर मैं बहुत दिनों से आपके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहा था, सौभाग्य से आपने मुझे शाप से छुड़ा दिया, अब यदि इस उपकार के बदले में मैंने आपका कोई प्रत्युपकार न किया तो मेरा यह शरीर पाना तथा गन्धर्वलोक में जाना व्यर्थ ही होगा ॥ ५६ ॥

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते ॥ ५७ ॥

सञ्जीविनी—हे सखे! सखिशब्देन समप्राणतोक्ता। यथोक्तम्—'अत्यागसहनो बन्धुः सदैवानुमतः सुहृत्। एकक्रियं भवेन्मित्रं समप्राणः सखा मतः' इति। प्रयोगसंहारयोर्विभक्तमन्त्रं गान्धर्वं गन्धर्वदेवताकम्। संमोह्यतेऽनेनेति संमोहनं नाम ममास्त्रमादत्स्व गृहाण। यतोऽस्त्रात्प्रयोक्तुरस्त्रप्रयोगिणोऽरिहिंसा न च, विजयश्च हस्ते। हस्तगतो विजयो भवतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—सखे प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रं, गान्धर्वं, सम्मोहनं, नाम, मम, अस्त्रम् आदत्स्व, यतः प्रयोक्तुः अरिहिंसा, न च, विजयः च, हस्ते, 'भवतीति शेषः'।

वाच्य०—सखे मम मम अस्त्रम् आदीयतां, यतः अरिहिंसया न च 'भूयते' विजयेन च हस्ते 'भूयते'।

व्याख्या—हे सखे=सुहृत् 'अथ मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमरः। प्रयोगः=अस्त्रप्रक्षेपश्च, संहारः=संहरणञ्चेति प्रयोगसंहारौ, तयोः प्रयोगसंहारयोः, विभक्तः =विभिन्नः, मन्त्रः = देवादिसाधनात्मकः यस्य तत् प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्,

'मन्त्रो देवादिसाधने। वेदांशे गुप्तवादे च, इति हैमः। गन्धर्वो देवताऽस्येति गान्धर्वम्=गन्धर्वदेवताकम्। समोह्यतेऽनेनेति तत् संमोहनं=संमोहननामकम्। मम=प्रियंवदस्य। अस्त्रम्=आयुधम्। आदत्स्व=स्वीकुरु। मद्दत्तं गृहाणेत्यर्थः। यतः=अस्त्रात्, प्रयोक्तुः=प्रयोगकर्तुः। अरीणां=शत्रूणां, हिंसा =प्राणवियोगः मरणमित्यर्थ इति अरिहिंसा, न=नहि, विजयः=जयः, च हस्ते=करे 'भवति' विजयलाभो हस्ततलगतो भवतीत्यर्थः।

समा०—प्रयोगश्च संहारश्चेति प्रयोगसंहारौ, तयोः विभक्तः मंत्रो यस्य तत् प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्। सम्यक् मोह्यतेऽनेनेति संमोहनम्। अरीणां हिंसा इति अरिहिंसा। समानं ख्यायते जनैरिति सखा, तत्सबुद्धौ हे सखे।

अभि० हे मित्र अज! संमोहननामकं गन्धर्वदेवताकं ममायुधं त्वं स्वीकुरु इदं च प्रयोगसंहारयोर्विभिन्नमंत्रकमस्ति, अनेन चास्त्रेण शत्रुमरणं विनैव केवलं संमोहनात् युद्धे विजयः हस्तगतो भवतीति विशेषः।

हिन्दी— हे अज! आप चलाने तथा रोकने के पृथक् २ मन्त्रवाले संमोहन नाम के मेरे इस गन्धर्वास्त्र को ले लीजिये। इसमें यह विशेषता है कि इससे आप के शत्रु का प्राण भी नहीं निकलेगा और शत्रु के मूर्च्छित होने से विजय लाभ भी अनायास हो जायगा॥ ५७॥

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मुहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम्।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम्॥ ५८॥

सञ्जीविनी—किं च मां प्रति ह्रिया प्रहारनिमित्तयाऽलम्। कुतः। यद्यतो हेतोस्त्वं मां प्रहरन्नपि मुहूर्तं दयापरः कृपालुरभूः तस्मादुपच्छन्दयति प्रार्थयमाने मयि त्वया प्रतिषेधः परिहारः स एव रौक्ष्यं पारुष्यम् तन्न प्रयोज्यं न कर्तव्यम्॥

अन्वयः—मां, प्रति, ह्रिया, अलं, 'कुतः' यत्, त्वं प्रहरन्, अपि मुहूर्तं, दयापरः, अभूः, तस्मात्, उपच्छन्दयति, मयि, त्वया, प्रतिषेधरौक्ष्यं, न प्रयोज्यम्।

वाच्य०—यत् त्वया प्रहरता अपि दयापरेण अभावि तस्मात् मयि त्वं प्रतिषेधरौक्ष्यं न प्रयुङ्ग्धि।

व्याख्या—मां=प्रियंवदं। प्रति=उद्दिश्य। ह्रिया=लज्जया 'मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा साऽपत्रपा' इत्यमरः। प्रहारजनितयेत्यर्थः। अलं=निरर्थकं व्यर्थमिति यावत् 'कुत इत्यत आह' यत्=यस्मात् कारणात्। त्वं=अजः। मां=प्रियंवदं

हस्तिशरीरिणमित्यर्थः। प्रहरन्=प्रहारं कुर्वन्। अपि। मुहूर्तं=क्षणमात्रं दयायां=कृपायां परः=लग्नः इति दयापरः 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्' इत्यमरः। अनुकम्पान्वित इत्यर्थः। अभूः=आसीः। तस्मात्=कारणात्। उपच्छन्दयति = प्रार्थयमाने मयि=प्रियंवदे। त्वया=अजेन। रूक्षस्य भावः रौक्ष्यम्। प्रतिषेधः = अस्वीकार एव रौक्ष्यं=पारुष्यमिति प्रतिषेधरौक्ष्यम्। न = नहि प्रयोज्यं=कर्तव्यम्। त्वयाऽस्त्रमिदमवश्यं स्वीकर्तव्यमिति भावः।

समा०—दयायां पर इति दयापरः। रूक्षस्य भावः कर्म वा रौक्ष्यं, प्रतिषेध एव रौक्ष्यमिति प्रतिषेधरौक्ष्यम्। उपच्छन्दयतीति उपच्छन्दयन्, तस्मिन् उपच्छन्दयति।

अभि०—भवता मे मस्तकभेदनं बाणेन कृतमिति हेतोः किंचिन्मात्रमपि लज्जा न कार्या, यतो हि त्वया बाणप्रहारं कुर्वतापि मयि दया कृता। अतः प्रार्थयमाने मयि गन्धर्वास्त्रास्वीकरणरूपा रूक्षता न कर्तव्या।

हिन्दी—आप प्रहार करने के कारण लज्जित होकर मुझसे संकोच न करें। क्योंकि प्रहार करते हुए भी क्षणभर के लिये आप दयालु ही रहे, अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इस अस्त्र को अस्वीकार करके रुखेपन का व्यवहार न करें ॥५८॥

तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः।
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात् ॥ ५९ ॥

सञ्जीविनी—ना सोमश्चन्द्र इव नृसोमः उपमितसमासः। 'सोम ओषधिचन्द्रयोः।' इति शाश्वतः। पुरुषश्रेष्ठ इत्यर्थः अस्त्रविदस्त्रज्ञः सोऽजस्तथेति सोम उद्भवो यस्याः सा तस्याः सोमोद्भवायाः सरितो नर्मदायाः 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका' इत्यमरः। पवित्रं पयः उपस्पृश्य पीत्वा आचम्येत्यर्थः। उदङ्मुखः सन्निगृहीतशापान्निवर्तितशापात् उपकृतादित्यर्थः। तस्मात्प्रियंवदादस्त्रमन्त्रं जग्राह ॥ ५९ ॥

अन्वयः—नृसोमः, अस्त्रवित्, सः तथा, इति सोमोद्भवायाः, पवित्रं पयः, उपस्पृश्य, उदङ्मुखः 'सन्' निगृहीतशापात्, अस्त्रमंत्रं, जग्राह।

वाच्य०—नृसोमेनास्त्रविदा तेन उदङ्मुखेन 'सता' अस्त्रमंत्रो जगृहे।

व्याख्या—ना = नरः, सोमः = चन्द्र इव इति नृसोमः = नरश्रेष्ठ इत्यर्थः। अस्त्रम्=आयुधं वेत्ति जानातीति अस्त्रवित् सः = पूर्वोक्तः, अजः, तथा=

तेन प्रकारेण यथा भवता कथ्येत तथैव मया करिष्यते इत्यर्थः। इति = इत्थम् 'कथयित्वा'। सोमः = सोमवंशः उद्भवः = उत्पत्तिकारणं यस्याः सा सोमोद्भवा, तस्याः सोमोद्भवायाः = नर्मदाय इत्यर्थः। पवित्रं = शुद्धं पयः = जलम्, उपस्पृश्य = आचम्य। उदङ् = उदीचीं, प्रति मुखम् = आननं यस्य स उदङ्मुखः 'सन्' निग्रहीतः निवर्तितः, शापः = आक्रोशः यस्यासौ निग्रहीत-शापः तस्मात् निग्रह तशापात्। तस्मात् = प्रियंवदात्। अस्त्रस्य = आयुधस्य, मंत्रः = प्रयोगसंहाररहस्यमिति तमस्त्रमन्त्रम्। जग्राह = गृहीतवान्।

समा०—ना सोमः इव इति नृसोमः। सोम उद्भवः यस्याः सा सोमोद्भवा तस्याः सोमोद्भवायाः। उदङ् मुखं यस्य स उदङ्मुखः। निग्रहीतः शापो यस्यासौ तस्मात् निग्रहीतशापात्। अस्त्रस्य मंत्रस्तमस्त्रमंत्रम्।

अभि०—नरश्रेष्ठोऽजः प्रियंवदस्य प्रार्थनां स्वीकृत्य, नर्मदाजलमाचम्य उत्तरा-भिमुखो भूत्वा निवारितशापात् प्रियंवदात् समंत्रं सरहस्यमस्त्रं गृहीतवान्।

हिन्दी—चन्द्रमा के समान सुन्दर और अस्त्रविद्या के पण्डित अज ने प्रियंवद की बात को स्वीकार कर लिया और चन्द्रमा से उत्पन्न हुई नर्मदा के पवित्र जल का आचमन करके तथा उत्तराभिमुख होकर शाप से मुक्त हुए उस गन्धर्व से मन्त्र सहित अस्त्र को ले लिया, अर्थात् सीख लिया ॥ ५९ ॥

एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ॥६०॥

सञ्जीविनी—एवमध्वनि मार्गे दैवयोगाद्दैववशादचिन्त्यहेत्वनिर्धार्यहेतुकं सख्यं सखित्वम् 'सख्युर्यः' इति यप्रत्ययः। आसेदुषोः प्राप्तवतोस्तयोर्मध्य एको गन्धर्वश्चैत्ररथस्य प्रदेशान् 'अस्योद्यानं चैत्ररथम्' इत्यमरः। अपरोऽजः सौराज्येन राजन्वत्तया रम्यान्विदर्भदेशान्ययौ ॥६०॥

अन्वयः—एवम्, अध्वनि, दैवयोगात्, अचिन्त्यहेतु, सख्यम्, आसेदुषोः, तयोः, एकः, चैत्ररथप्रदेशान्, अपरः, सौराज्यरम्यान्, विदर्भान् ययौ।

वाच्य०—तयोरेकेन चैत्ररथप्रदेशाः अपरेण सौराज्यरम्या विदर्भा ययिरे।

व्याख्या—एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण अध्वनि=मार्गे दैवस्य=विधेः योगः संबंधः वशः इति दैवयोगस्तस्मात् दैवयोगात्। अचिंत्यः=अतर्क्यः, हेतुः=कारणं यस्य तत् अचिन्त्यहेतु। सख्युर्भावः सख्यं=मित्रताम्। आसेदुषोः=प्राप्तवतोः। तयोः=

अजप्रियंवदयोः 'मध्ये' एकः=प्रियंवदः, चैत्ररथस्य=कुबेरोद्यानस्य। प्रदेशाः=भागाः, तान् चैत्ररथप्रदेशान्। ययौ=जगाम। अपरः=रघुपुत्रोऽजः। सुराज्ञो भावः कर्म वा सौराज्यं तेन सौराज्येन=सुनृपतित्वेन रम्याः=मनोहराः तान् सौराज्यरम्यान् विदर्भान्=क्रथकैशिकान्। ययौ=जगाम।

समा०—दैवस्य योगः दैवयोगस्तस्मात् दैवयोगात्। अचिन्त्यो हेतुर्यस्य तत् अचिन्त्यहेतु। चैत्ररथस्य प्रदेशास्तान् चैत्ररथप्रदेशान्। सुराज्ञो भावः कर्म वा सौराज्यं, सौराज्येन रम्यास्तान् सौराज्यरम्यान्।

अभि०—पूर्वोक्तप्रकारेण विधिवशात् मित्रत्वं प्राप्तयोः, अजप्रियंवदयोर्मध्ये प्रियंवदः कुबेरोद्यानं प्रति अजश्च विदर्भदेशम्प्रति गतः।

हिन्दी—इस प्रकार दैवसंयोग से अकल्पनीय मित्रता को प्राप्त हुए, उन दोनों में से प्रियंवद तो चैत्ररथ नामक कुबेर के बगीचे की ओर और कुमार अज अच्छे शासन के कारण रमणीय विदर्भ देश की ओर चला गया ॥६०॥

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥६१॥

सञ्जीविनी—नगरस्योपकण्ठे समीपे तस्थिवांसं स्थितं तमजं तस्याजस्यागमेनागमनेनारूढ उत्पन्नो गुरुः प्रहर्षो यस्य स क्रथकैशिकेन्द्रो विदर्भराजः प्रवृद्धोर्मिरूर्मिमाली समुद्रश्चन्द्रमिव प्रत्युज्जगाम ॥६१॥

अन्वयः—नगरोपकण्ठे, तस्थिवांसं, तं, तदागमारूढगुरुप्रहर्षः, क्रथकैशिकेन्द्रः प्रवृद्धोर्मिः, ऊर्मिमाली, चन्द्रम्, इव, प्रत्युज्जगाम।

वाच्य०—तस्थिवान् स तदागमारूढगुरुप्रहर्षेण क्रथकैशिकेन्द्रेण, प्रवृद्धोर्मिणा, ऊर्मिमालिना चन्द्र इव प्रत्युज्जग्मे।

व्याख्या—नगरस्य=भोजस्य राजधान्याः, उपकण्ठं=समीपमिति नगरोपकण्ठम्, तस्मिन् नगरोपकण्ठे। तस्थिवांसं=स्थितं वर्तमानमित्यर्थः तम्=अजम् तस्य=अजस्य, आगमः=आगमनं, तेन आरूढः=उत्पन्नः, गुरुः महान्, प्रहर्षः=आनन्दः यस्य स तदागमारूढगुरुप्रहर्षः। क्रथकैशिकानां=विदर्भाणाम्, इन्द्रः=स्वामी इति क्रथकैशिकेन्द्रः भोजराज इत्यर्थः। प्रकर्षेण वृद्धाः इति प्रवृद्धाः=समेधिताः, ऊर्मयः=तरङ्गाः यस्मिन् स प्रवृद्धोर्मिः। ऊर्मीणां=तरङ्गाणां माला=पंक्तिः अस्यास्तीति ऊर्मिमाली=समुद्र इत्यर्थः। ... भङ्गस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियां

वीचिः' इत्यमरः। चन्द्रं=हिमांशुम्। 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' इत्यमरः। प्रत्युज्जगाम=प्रत्युद्गतवान्।

समा०—नगरस्य उपकण्ठं, तस्मिन् नगरोपकण्ठे। तस्यागमस्तदागमः, तेन आरूढः गुरुः प्रहर्षो यस्य स तदागमारूढगुरुप्रहर्षः। क्रथकैशिकानामिन्द्र इति क्रथकैशिकेन्द्रः। प्रवृद्धाः ऊर्मयः यस्मिन् स प्रवृद्धोर्मिः। ऊर्मीणां माला अस्यास्तीति ऊर्मिमाली।

अभि०—निजनगरसमीपे वर्तमानमजं श्रुत्वा विदर्भाधिपतिः, कुमारागमनाद् हृष्यन् सन् तद्दर्शनौत्सुक्येन तथैव स्वागतार्थं तं प्रत्युज्जगाम, यथा पूर्णचन्द्रोदयं वीक्ष्य तदालिङ्गनार्थंप्रवृद्धोर्मिः सन् समुद्रः प्रत्युद्गच्छति।

हिन्दी—नगर के समीप में ठहरे हुए अज का समाचार सुनकर और अज के आगमन से अतीव आनन्दित महाराज विदर्भनरेश ने वहाँ जाकर वैसे ही अज का स्वागत किया, जैसे समुद्र, अपनी उन्नत तरङ्गों से पूर्णचन्द्र का स्वागत करता है ॥६१॥

प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः।
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम् ॥६२॥

सञ्जीविनी—एनमजमग्रयायी सेवाधर्मेण पुरो गच्छन्नित्यर्थः, नीचैर्नम्रः पुरं प्रवेश्य प्रवेशं कारयित्वा प्रीत्याऽर्पितश्रीस्तथा तेन प्रकारेणोपाचरदुपचरितवान् यथा येन प्रकारेण तत्र पुरे समेतो मिलितो जनो वैदर्भं भोजमागन्तुं प्राघुणिकं मेने, अजं गृहेशं गृहपतिं मेने ॥ ६२ ॥

अन्वयः—एनम्, अग्रयायी, नीचैः, पुरं, प्रवेश्य, 'प्रीत्या' अर्पितश्रीः तथा उपाचरत्, यथा, तत्र, समेतः, जनः वैदर्भम्, आगन्तुम्, अजं, गृहेशं मेने।

वाच्य०—एष अर्पितश्रियोपाचर्यत। जनेन वैदर्भः आगन्तुः मेने।

व्याख्या—एनम् = अजम्। अग्रे = पुरः, याति = गच्छति तच्छील इति अग्रयायी=सेवाधर्मेण मार्गं प्रदर्शयन् पुरो गच्छन्, विदर्भनरेश इत्यर्थः। नीचैः= विनीतः "सन्" पुरं=नगरं प्रवेश्य=प्रवेशं कारयित्वा। "प्रीत्या" अर्पिता= समर्पिता, श्रीः=लक्ष्मीः, येन सः अर्पितश्रीः। तथा=तेन प्रकारेण। उपाचरत्= उपचरितवान् सेवां चकारेत्यर्थः। यथा=येन प्रकारेण। तत्र=तस्मिन् नगरे। समेतः=मिलितः। जनः=लोकः 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः, वैदर्भं=विदर्भ-

नरेशम्। आगन्तुम्=अभ्यागतं प्राघुणिकमित्यर्थः 'आवेशिक आगन्तुरतिथिर्ना गृहागते। प्राघूर्णिकः, प्राघुणकः' इत्यमरः। अजं = रघुपुत्रम्। गृहस्य=गेहस्य। ईशः=स्वामी, तं गृहेशं 'गृहं गेहोदवसित वेश्म सद्म निकेतनम्' इत्यमरः। मेने=ज्ञातवान्।

अभि०—विदर्भनरेशो भोजः सेवकवत्, अग्रे गच्छन् नम्रः सन् अजं पुराभ्यन्तरे आनीय, अजाय समर्पितसर्वसम्पत्कः तथा तत्सेवां चकार यथा तत्रस्थः जनः प्राघुणिकमजं गृहपतिं विदर्भराजञ्चाभ्यागतममंस्त।

हिन्दी—सेवा भाव से आगे २ मार्ग बतलाते, विनीत, राजा भोज, अज को नगर में ले गये और प्रेम से अपना सब कुछ अज को भेंट करके, नम्र भाव से अज की ऐसी सेवा की, कि स्वयंवर में एकत्रित जन समुदाय यही समझने लगा कि अज ही इस घर के स्वामी हैं, और राजा भोज अतिथि हैं ॥६२॥

तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां
प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्।
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यां
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास ॥६३॥

संजीविनी—रघुप्रतिनिधी रघुकल्पः रघुतुल्य इत्यर्थः। उक्तं च दण्डिना सादृश्यवाचकप्रस्तावे 'कल्पदेशीयदेश्यादिप्रख्यप्रतिनिधी अपि' इति। सोऽजः प्रणतैर्नमस्कृतवद्भिः, कर्तरि क्तः। तस्य भोजस्याधिकारो नियोगस्तस्य पुरुषैः अधिकृतैरित्यर्थः। प्रदिष्टां निर्दिष्टां प्राग्द्वारस्य वेद्यां विनिवेशितः प्रतिष्ठापितः पूर्णकुम्भो यस्यास्ताम्, स्थापितमङ्गलकलशामित्यर्थः। रम्यां रमणीयां नवोपकार्यां नूतनं राजभवनम्। 'उपकार्या राजसद्मन्युपचारचितेऽन्यवत्' इति विश्वः। मदनो बाल्यात्परां शैशवादनन्तरां दशामिव यौवनमिवेत्यर्थः। अध्युवासाधिष्ठितवान् तत्रोषितवानित्यर्थः। 'उपान्वध्याङ् वसः' इति कर्मत्वम् ॥६३॥

अन्वयः—रघुप्रतिनिधिः, सः, प्रणतैः, तस्य, अधिकारपुरुषैः, प्रदिष्टां, प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भां, रम्यां, नवोपकार्यां, मदनः बाल्यात्, परां, दशाम्, इव, अध्युवास।

वाच्य०—रघुप्रतिनिधिना तेन तस्याधिकारपुरुषैः प्रदिष्टा, प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भा रम्या नवोपकार्या, मदनेन बाल्यात् परा दशा इव अध्यूषे।

व्याख्या—रघोः=दिलीपसूनोः, प्रतिनिधिः=सदृशः, इति रघुप्रतिनिधिः रघुतुल्य इत्यर्थः। सः=अजः। प्रणतैः=प्रणमद्भिः। तस्य=भोजस्य। अधिकारे=नियोगे नियुक्ताः, पुरुषाः=सेवकजनाः, तैः अधिकारपुरुषैः। प्रदिष्टां=निर्दिष्टाम्। प्राग्द्वारस्य, वेदिः=परिष्कृता भूमिः, तत्र विनिवेशितः=स्थापितः, पूर्णकुम्भः=मांगलिककलशः यस्यां सा, तां प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्। रम्यां=रमणीयां मनोहरामित्यर्थः। नवा=नूतना चासौ उपकार्या=राजभवनमिति नवोपकार्या तां नवोपकार्याम्, मदनः=कामः बालस्य भावो बाल्यं तस्मात् बाल्यात्=शैशवात्, पराम्=अनन्तरां, दशां=यौवनम्, इव=यथा, अध्युवास=अधिष्ठितवान्। तत्र निवासं कृतवानित्यर्थः।

समा०—रघोः प्रतिनिधिरिति रघुप्रतिनिधिः। अधिकारस्य पुरुषा इति अधिकारपुरुषास्तैरधिकारपुरुषैः। प्राग्द्वारस्य वेदिरिति प्राग्द्वारवेदिस्तत्र विनिवेशितः पूर्णः कुम्भः यस्यां सा प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भा, ताम्। नवा चासौ उपकार्या नवोपकार्या, तां नवोपकार्याम्।

अभि०—रघुतुल्योऽजः, विदर्भनरेशनियुक्तैरागन्तुकजनसेवाधिकृतैः पुरुषैः, निर्दिष्टे, प्रथमद्वारवेद्यां स्थापितमांगलिकघटैः सुशोभिते रम्ये राजभवने तथोषितवान् यथा स्मरः शैशवात्परे यौवने निवसति।

हिन्दी—रघु का प्रतिनिधि अज, भोजराज के सेवकों से बतलाये हुए उस मनोहर राजभवन में गया जिसके द्वार की चौकियों पर जल से पूर्ण मांगलिक कलश रखे हुए थे। उस राजभवन में अज इस प्रकार रहने लगा मानो कामदेव बाल्यावस्था को बिताकर जवानी में रहने लगा हो ॥६३॥

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं
कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥६४॥

सञ्जीविनी—तत्रोपकार्यायां स्वयंवरनिमित्तं समाहृतः संमेलितो राजलोको येन तत्कमनीयं स्पृहणीयं कन्याललाम कन्यासु श्रेष्ठम् 'ललामोऽस्त्री ललामापि प्रभावे पुरुषे ध्वजे। श्रेष्ठभूषाशुण्डशृङ्गपुच्छचिह्नाश्वलिङ्गिषु' इति यादवः। लिप्सोर्लब्धुमिच्छोः। लभेः सन्नन्तादुप्रत्ययः। अजस्य भावावबोधे पुरुषस्याभिप्रायपरिज्ञाने कलुषाऽसमर्था दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।

'राजानं कामिनं चौरं प्रविशन्ति प्रजागराः' इति भावः। अभिमुखीशब्दो ङीषन्तश्च्व्यन्तो वा।

अन्वयः—तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं, कमनीयं, कन्याललाम, लिप्सोः, अजस्य, भावावबोधकलुषा, दयिता, इव, रात्रौ, निद्रा, चिरेण, नयनाभिमुखी, बभूव।

वाच्य०—भावावबोधकलुषया दयितयेव निद्रया चिरेण नयनाभिमुखया बभूवे।

व्याख्या—तत्र=उपकार्यायां, नवीनराजभवने इत्यर्थः। राज्ञां लोकः राजलोकः। स्वयंवरार्थे=स्वयंवरणार्थं, समाहृतः=संगमितः, राजलोकः=नृपसमूहः येन तत् स्वयंवरसमाहृतराजलोकम्। कमनीयं=स्पृहणीयं कन्यासु=कुमारीषु, ललाम= श्रेष्ठमिति तत् कन्याललाम। लब्धुमिच्छति लिप्सति, लिप्सतीति लिप्सुस्तस्य लिप्सोः=लब्धुमिच्छोः। अजस्य=रघुपुत्रस्य। भावस्य=अभिप्रायस्य अवबोधः परिज्ञानमिति भावावबोधः, भावावबोधे कलुषा=असमर्था इति भावावबोधकलुषा, पुरुषाभिप्रायपरिज्ञानेऽसमर्था इत्यर्थः। दयिता=प्रिया। इव=यथा रात्रौ=निशायां रजन्यामित्यर्थः। 'निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः। निद्रा=शयनं 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः' इत्यमरः। चिरेण=अतिविलम्बेन नयनयोः=नेत्रयोः। अभिमुखी=सम्मुखी। बभूव=जाता।

समा०—स्वयंवरार्थं समाहृतः राज्ञां लोको येन तत् स्वयंवरसमाहृतराजलोकम्, तत्। कन्यासु ललाम कन्याललाम, तत्। लब्धुमिच्छति लिप्सति। लिप्सतीति लिप्सुस्तस्य लिप्सोः। भावस्य अवबोधः, इति भावावबोधः, भावावबोधे कलुषा इति भावावबोधकलुषा। नयनयोः अभिमुखी इति नयनाभिमुखी।

अभि०—यस्य कन्यारत्नस्य प्राप्त्यर्थं देशान्तरेभ्यः स्वयंवरेऽनेके राजानः आमन्त्रिताः सन्तः समवेताः, तत्कन्यारत्नं मया कथं नु लभ्यमिति चिन्ताग्रस्त-तया अजः, रात्रौ तथैव चिरेण निद्रां लब्धवान् यथा पुरुषाभिप्रायपरिज्ञानेऽसमर्था काचित् रमणी चिरेण समागच्छति पुरुषपार्श्वं।

हिन्दी—उस नए राजभवन में, जिस कमनीय कन्यारत्न की प्राप्ति के लिये सैकड़ों राजा आये थे, उसे कैसे प्राप्त करें, इस चिन्ता के कारण अज की आँखों में रात को निद्रा उसी प्रकार देर से आयी जैसे कोई प्रेयसी प्रियतम का अभिप्राय न जानने से अपने प्रिय के पास विलम्ब से जाती है ॥६४॥

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम् ।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः ॥६५॥

सञ्जीविनी—कर्णभूषणाभ्यां निपीडितौ पीवरौ पीनावंसौ यस्य तम् शय्याया उत्तरच्छदस्योपर्यास्तरणवस्त्रस्य विमर्देन घर्षणेन कृशो विगतोऽङ्गरागो यस्य तं न स्वङ्गनासङ्गादिति भावः । प्रथितप्रबोधं प्रकृष्टज्ञानं तमेनमजं सवयसः समानवयस्का उदारवाचः प्रगल्भगिरः सूतात्मजाः वन्दिपुत्राः 'वैतालिका' इति वा पाठः 'वैतालिका बोधकराः' इत्यमरः वाग्भिः स्तुतिपाठैरुषसि प्राबोधयन्प्रबोधयामासुः ।

अन्वयः—कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं, शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागं, प्रथितप्रबोधं, तं, सवयसः उदारवाचः, सूतात्मजाः, वाग्भिः उषसि, प्राबोधयन् ।

वाच्य०—कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसः शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागः प्रथितप्रबोधः सः सवयोभिः उदारवाग्भिः सूतात्मजैः वाग्भिः उषसि, प्राबोध्यत ।

व्याख्या—कर्णयोः = श्रोत्रयोः । भूषणे = आभूषणे अलङ्कारौ इत्यर्थः इति कर्णभूषणे, कर्णभूषणाभ्यां निपीडितौ = विमर्दितौ, पीवरौ = स्थूलौ, अंसौ = स्कन्धौ यस्य स कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसः, तम् । शय्यायाः = खट्वायाः 'शयनं मंचपर्यंकपल्यंकाः खट्वया समाः' इत्यमरः । उत्तरच्छदः = उपर्यास्तरणवस्त्रमिति शय्योत्तरच्छदः तस्य विमर्दः = संघर्षणं तेन शय्योत्तरच्छदविमर्देन कृशः = विरलः, निर्मृष्ट इत्यर्थः, अंगरागः=कस्तूरिकाचन्दनादिलेपः यस्य सः शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागस्तम् । प्रथितः=प्रकृष्टः प्रबोधः=ज्ञानं यस्य स तं प्रथितप्रबोधं प्रकृष्टज्ञानवन्तमित्यर्थः । तम्=अजं । समानं=तुल्यं । वयः= अवस्था येषां ते सवयसः । उदाराः = उत्कृष्टाः प्रगल्भाः, वाचः = गिरः येषान्ते उदारवाचः । सूतानां = वन्दिनां स्तुतिपाठकानामित्यर्थः, आत्मजाः = पुत्रा इति सूतात्मजाः । वाग्भिः=स्तुतिपाठैः । उषसि=प्रत्यूषे । प्राबोधयन्= प्रबोधयामासुः ।

समा०—कर्णयोः भूषणे, ताभ्यां निपीडितौ पीवरौ अंसौ यस्य सः, तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसम् । शय्यायाः उत्तरच्छदः इति शय्योत्तरच्छदः, शय्योत्तरच्छदस्य विमर्दः इति शय्योत्तरच्छदविमर्दः, तेन कृशः अंगरागः यस्य सः,

शय्योत्तरच्छदावमर्दकृशांगरागम् । प्रथितः प्रबोधो यस्य स तं प्रथितप्रबोधम् । समानं वयः येषां ते सवयसः । उदाराः वाचः येषान्ते उदारवाचः । सूतान्नाम् आत्मजाः इति सूतात्मजाः ।

अभि०—कर्णकुण्डलद्वयेन पीडितस्कन्धद्वयं खट्वास्तरणवस्त्रेण निर्मृष्टकस्तूरिकादिलेपनं प्रथितज्ञानमजं प्रगल्मा वन्दिपुत्राः प्रातःकाले मंगलगीतैः प्रबोधितवन्तः ।

हिन्दी—कुण्डलों के दबाव से जिसके कन्धों पर चिह्न पड़ गया और पलंग के बिछौने की रगड़ से जिसके शरीर पर लगा हुआ, कस्तूरी चन्दन आदि का अंगराग भी मिट गया, और जो बुद्धिमान् है ऐसे अज को समान अवस्थावाले और मधुर बोलनेवाले बन्दिपुत्रों ने दिन निकलते ही मंगलगीत गाकर जगाया ॥६५॥

रात्रिर्गता मतिमतां वर मुञ्च शय्यां
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव बिभर्ति गुरुर्विनिद्र-
स्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥६६॥

सञ्जीविनी—हे मतिमातां वर ! निर्धारणे षष्ठी । रात्रिर्गता शय्यां मुञ्च विनिद्रो भवेत्यर्थः । विनिद्रत्वे फलमाह—धात्रेति । धात्रा ब्रह्मणा जगतो धूर्भारः 'धूः स्याद्यानमुखे भारे' इति यादवः । द्विधैव द्वयोरेवेत्यर्थः, एवकारस्तृतीयनिषेधार्थः । विभक्ता ननु विभज्य स्थापिता खलु । तत्किमत आह तां धुरमेकत एककोटौ तव गुरुः पिता विनिद्रः सन्बिभर्ति तस्या धुरो भवान् धुरं वहतीति धुर्यो भारवाही तस्य पदं वहनस्थानम् अपरं युद्धुर्यपदं तदवलम्बी ततो विनिद्रो भवेत्यर्थः । न ह्युभयवाह्यमेको वहतीति भावः ॥६६॥

अन्वयः—मतिमतां वर, रात्रिः गता, शय्यां मुञ्च, धात्रा, जगतः, धूः, द्विधा, एव विभक्ता, ननु । ताम्, एकतः, तव, गुरुः, विनिद्रः, 'सन्' बिभर्ति तस्याः भवान्, अपरधुर्यपदावलम्बी ।

वाच्य०—मतिमतां वर रात्र्या गतया 'भूयते' 'त्वया' शय्या मुच्यतां, धाता जगतः धुरं द्विधैव विभक्तवान्, ननु ताम् एकतः तव गुरुणा विनिद्रेण 'सता' भ्रियते तस्य भवता अपरधुर्यपदावलम्बिना 'भूयताम्' ।

व्याख्या—मतिः=बुद्धिः अस्ति येषान्ते मतिमन्तस्तेषां मतिमतां, वरः=श्रेष्ठः तत्संबुद्धौ हे मतिमतां वर ! हे अज ! रात्रिः=रजनी । गता=व्यतीता । शय्यां=

खट्वां मुञ्च=त्यज । विनिद्रो भवेत्यर्थः । धात्रा=ब्रह्मणा । गच्छतीति जगत्, तस्य जगतः=संसारस्य । धूः=भारः जगत्पालनरूपो भार इत्यर्थः । द्विधा=द्विप्रकारेण एव । विभक्ता=विभज्य स्थापिता । ननु=खलु । तां=धुरम् । एकतः=एककोटौ । तव=अजस्य । गुरुः=जनकः । रघुरित्यर्थः । विगता नष्टा त्यक्ता इत्यर्थः, निद्रा=स्वापः येन स विनिद्रः, 'सन्' । बिभर्ति=धारयति । तस्याः=धुरः । भवान्=अजः । धुरं वहतीति धुर्यः, धुर्यस्य=भारवाहिनः पदं=वहनस्थानमिति धुर्यपदम् । अपरम्=अन्यत् च धुर्यपदमिति अपरधुर्यपदम्, अपरधुर्यपदमवलम्बते तच्छील इति अपरधुर्यपदावलम्बी, अस्तीति शेषः, द्वाभ्यां वाह्यमेको न वोढुं समर्थ इति भवान् विनिद्रो भवत्वित्यर्थः ।

समा०—धुरं वहतीति धुर्यः, धुर्यस्य पदमिति धुर्यपदम्, अपरञ्च तत् धुर्यपदमिति अपरधुर्यपदम् , अपरधुर्यपदमवलम्बते तच्छील इति अपरधुर्यपदावलम्बी ।

अभि०—हे बुद्धिमत्सु श्रेष्ठ ! रात्रिरतिक्रान्ता त्वमपि खट्वां परित्यज्य विनिद्रो भव । ब्रह्मणा जगद्रक्षणभारौ द्विधा विभज्य तव पितरि त्वयि च स्थापितः । तव पिता निद्रां त्यक्त्वा सावधानः सन् प्रजापालनभारमेकतः बिभ्रत् पृथिवीं रक्षति । अतस्त्वमपि निद्रां विहाय अपरधुर्यपदावलम्बी भूत्वा पृथिवीं पालय, नहि द्वाभ्यां वहनयोग्यमेकः वोढुं शक्नोतीत्यर्थः ।

हिन्दी— हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अज ! रात बीत गयी है । इसलिये पलङ्ग को छोड़िये, ब्रह्मा ने पृथ्वी के पालन का भार दो भागों में बाँटा है, जिसे एक ओर तो तुम्हारे पिता रघु सावधान होकर सम्भालते हैं और दूसरी ओर का भार तुम्हें ही सावधान होकर सम्भालना है ॥६६॥

निद्रावशेन भवताऽप्यनवेक्षमाणा,
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी,
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥६७॥

सञ्जीविनी—चन्द्रारविन्दराजवदनादयो लक्ष्मीनिवासस्थानानीति प्रसिद्धिमाश्रित्योच्यते । निद्रावशेन निद्राधीनेन स्त्र्यन्तरासङ्गोऽत्र ध्वन्यते । भवता पर्युत्सुकत्वमपि त्वय्यनुरक्तत्वमपीत्यर्थः । 'प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च' इति सप्तम्यर्थे तृतीया । अपिशब्दस्तद्विषयानुरागस्यानपेक्ष्यत्वद्योतनार्थः । निशि खण्डिता

भर्तुरन्यासङ्गज्ञानकलुषिताऽबलेव नायिकेव 'ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्या-कषायिता' इति दशरूपके । अनवेक्षमाणाऽविचारयन्ती सती उपेक्षमाणेत्यर्थः। 'ह्यनवेक्ष्यमाणा' इति पाठे निद्रावशेन भवताऽनवेक्ष्यमाणाऽनिरीक्ष्यमाणा कर्मणि शानच् । लक्ष्मीः प्रयोजककर्त्री येन प्रयोज्येन चन्द्रेण पर्युत्सुकत्वं त्वद्वि-रहवेदनाम् 'कालाक्षमत्वमौत्सुक्यं मनस्तापज्वरादिकृत्' इत्यलंकारे । विनोद-यति निरासयतीति योजना । शेषं पूर्ववत् । नाथस्त्वर्थोपपत्तिमपश्यन्निमं पक्ष-मुपैद्विष्ट । लक्ष्मीर्येन चन्द्रेण सह त्वदाननसदृशत्वादिति भावः । विनोदयति विनोदं करोति । विनोदशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्प्रत्ययः। सादृश्यदर्शनादयो हि विरहिणां विनोदस्थानानीति भावः । स चन्द्रोऽपि दिगन्त-लम्बी पश्चिमाशां गतः सन् अस्तं गच्छन्नित्यर्थः । अत एव त्वदाननरुचिं विज-हाति त्वन्मुखसादृश्यं त्यजतीत्यर्थः । अतो निद्रां विहाय, तां लक्ष्मीमनन्यशरणां परिगृहाणेति भावः ॥६७॥

अन्वयः—निद्रावशेन, भवता, पर्युत्सुकत्वम्, अपि, निशि, खण्डिता, अबला, इव, अनवेक्षमाणा, 'सती' लक्ष्मीः, येन, पर्युत्सुकत्वं विनोदयति, सः, चन्द्रः, अपि, दिगन्तलम्बी, 'सन्' त्वदाननरुचिं, विजहाति ।

वाच्य०—निद्रावशेन भवता पर्युत्सुकत्वमपि निशि खण्डितया अबलया इव अनवेक्षमाणया 'सत्या' लक्ष्म्या येन पर्युत्सुकत्वं विनोद्यते तेन चन्द्रेणापि दिगन्तलम्बिना 'सता' त्वदाननरुचिः विहीयते ।

व्याख्या—निद्रायाः=स्वापस्य, वशः=अधीनः इति निद्रावशस्तेन निद्रा-वशेन निद्रावशीभूतेनेत्यर्थः । भवता=अजेन । परितः उत्सुका इति पर्युत्सुका, पर्युत्सुकाया भावः पर्युत्सुकत्वम्=अत्यौत्कण्ठ्यम् । त्वय्यनुरक्तत्वमपीत्यर्थः, अपि निशि=रात्रौ । खण्डिता=पत्युरन्यासंगज्ञानकलुषिता । अबला=नायिका । इव यथा । अवेक्षत इति अवेक्षमाणा, न अवेक्षमाणा इत्यनवेक्षमाणा= उपेक्षमाणा । 'सती' लक्ष्मीः श्रीः, (प्रयोजककर्त्री) येन चन्द्रेण सह विनोदयति =विनोदं करोति । सः=पूर्वोक्तः । चन्द्रः=इन्दुरपि दिशामन्तः दिगन्तः दिगन्तं=पश्चिमाशां लम्बते तच्छीलः इति दिगन्तलम्बी अस्तं गत इत्यर्थः, सन् । तव=भवतोऽजस्य । आननं=मुखं तस्य रुचिं=कान्तिं शोभासा-दृश्यमित्यर्थः इति त्वदाननरुचिं 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः । विजहाति=त्यजति ।

समा०—निद्रायाः वशः निद्रावशस्तेन निद्रावशेन। अवेक्षते इति अवेक्ष-माणा न अवेक्षमाणा इति अनवेक्षमाणा। दिशामन्तः दिगन्तः, दिगन्तं लम्बते तच्छील इति दिगन्तलम्बी। तव आननं त्वदाननं, त्वदाननस्य रुचिः इति त्वदाननरुचिस्तां त्वदाननरुचिम्।

अभि०—निद्रारूपान्यस्त्रियामनुरक्तं त्वां ज्ञात्वा रात्रौ खण्डिता अत्रलेव खिन्ना सती तव सौन्दर्यलक्ष्मीः, त्वामभिलषन्त्यपि तवाननसदृशं चन्द्रं स्वमनो-विनोदार्थमाश्रितवती, इदानीं स चन्द्रोऽप्यस्तंगत इति सा निराश्रया जाता अतस्त्व निद्रां विहाय अनन्यशरणां तां लक्ष्मीमाश्वासय।

हिन्दी—निद्रारूपी दूसरी स्त्री के वश में हुए तुम्हें जानकर तुमको चाहती हुई भी तुम्हारी सौन्दर्य-लक्ष्मी, तुमसे खिन्न होकर तुम्हारे ही मुख के सदृश सुन्दर चन्द्रमा के पास अपनी विरह वेदना मिटाने के लिये, रात में खण्डिता नायिका की तरह चली गयी थी, किन्तु वह चन्द्रमा भी इस समय क्षीण कान्ति (अस्त) हो रहा है, और वह सौन्दयलक्ष्मी निराश्रित हो गयी है। अतः निद्रा का परित्याग करके तुम उसे स्वीकार कर लो ॥६७॥

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन तावत्सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्तश्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम् ॥६८॥

सञ्जीविनी—तत्तस्माल्लक्ष्मीपरिग्रहणाद्वल्गुना मनोज्ञेन च 'वल्गु स्थाने मनोज्ञे च वल्गु भाषितमन्यवत्' इति विश्वः। युगपत्तावदुन्मिषितेन युगपदेवोन्मी-लितेन सद्यो द्वे अपि परस्परतुलामन्योन्यसादृश्यमधिरोहतां प्राप्नुताम्। प्रार्थनायां लोट्। के द्वे अन्तःप्रस्पन्दमाना चलन्ती परुषेतरा स्निग्धा तारा कनीनिका यस्य तत्तथोक्तम्। 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः। तव चक्षुः अन्तःप्रचलितभ्रमरं चलद्भृङ्गं पद्मं च। युगपदुन्मेषे सति संपूर्णसादृश्यलाभ इति भावः ॥६८॥

अन्वयः—तत्, वल्गुना, युगपत्, तावत्, उन्मिषितेन, सद्यः, द्वे, परस्पर-तुलाम्, अधिरोहतां, 'के द्वे' अन्तः प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारं, तव, चक्षुः, "अन्तः" प्रचलितभ्रमरं, पद्मं, च।

वाच्य०—द्वाभ्यामपि परस्परतुला अधिरुह्यताम्, अन्तः प्रस्पन्दमानपरुषेत-रतारेण तव चक्षुषा, अन्तः प्रचलितभ्रमरेण पद्मेन च।

व्याख्या—तत्=तस्मात् हेतोः लक्ष्मीपरिग्रहणादित्यर्थः, वल्गुना=मनोज्ञेन युगपद्=एकवारम्। तावद्=एव उन्मिषितेन=उन्मीलितेन पद्मपक्षे विकसितेन। सद्यः=सपदि द्वे=उभे नेत्रपद्मे इत्यर्थः। परस्परयोः=अन्योन्ययोः। तुला=सादृश्यं इति परस्परतुला तां परस्परतुलाम्। अधिरोहतां=प्राप्नुताम्, 'के द्वे इत्याह' अन्तः=मध्ये परुषात् इतरा परुषेतरा। प्रस्पन्दमाना=प्रकर्षेण चलन्ती, परुषेतरा=स्निग्धा, तारा=कनीनिका यस्य तत्, प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारम्। तव=अजस्य, चक्षुः=नेत्रम् अन्तः=मध्ये। प्रचलिताः=भ्रमन्तः। भ्रमराः==द्विरेफाः यस्मिन् तत् प्रचलितभ्रमरं पद्मं=कमलं च।

समा०—परस्परयोः तुला इति परस्परतुला, तां परस्परतुलाम्। परुषात् इतरा इति परुषेतरा, प्रस्पन्दमाना परुषेतरा तारा यस्य तत् प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारम्। प्रचलिताः भ्रमराः यस्मिन् तत् प्रचलितभ्रमरम्।

अभि०—प्रभातसमयः सञ्जातः, कमलानि विकसितानि, अतस्तव नेत्रकमलयोरुन्मीलनमपि समुचितम्, एवं च स्वस्वसौन्दर्यलक्ष्मीपरिग्रहणात् मध्ये प्रचलत्स्निग्धनीलकनीनिकं तव नेत्रं मध्ये भ्रमद्भ्रमरं कमलं च एकदैवोन्मीलितं विकसितं च सत् मनोज्ञेते द्वे अपि सद्यः परस्परपूर्णसादृश्यमधिगच्छताम्।

हिन्दी—इस समय, तुम्हारे बन्द नेत्रों में चिकनी तथा काली पुतलियाँ घूम रही हैं और कमलों के भीतर भ्रमर घूम रहे हैं, अतः यदि इस समय उठो तो अरुणोदय होने पर सौन्दर्यलक्ष्मी के ग्रहण से सुन्दर तथा एक ही समय खिले हुए तुम्हारे नेत्र और कमल दोनों परस्पर के सादृश्य को प्राप्त कर ले ॥६८॥

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥६९॥

सञ्जीविनी—विभातवायुः प्रभातवायुः स्वाभाविकं नैसर्गिकं ते तव मुखमारुतस्य निःश्वासपवनस्य सौरभ्यं तादृक्सौगन्ध्यमित्यर्थः। परगुणेनान्यदीयगुणेन सांक्रामिकगन्धेनेत्यर्थः। ईप्सुराप्तुमिच्छुरिव 'आप्ज्ञप्यृधामीत्' इतीकारादेशः। अनोकहानां वृक्षाणां श्लथं शिथिलं पुष्पं वृन्तात्पुष्पबन्धनात् 'वृन्तं प्रसवबन्धनम्' इत्यमरः। हरत्यादत्ते। अरुणांशुभिररुणकिरणैर्भिन्नैः सरसिजातैः सर-

सिजैः कमलैः सह 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक् । संसृज्यते संगच्छते । सृजेर्दैवादिकात्कर्तरि लट् ॥६६॥

अन्वयः–विभातवायुः, स्वाभाविकं, ते, मुखमारुतस्य, सौरभ्यं, परगुणेन, ईप्सुः, इव अनोकहानां, श्लथं, पुष्पं, वृन्तात्, हरति, अरुणांशुभिन्नैः, सरसिजैः, सह, संसृज्यते।

वाच्य०—विभातवायुना सौरभ्यमीप्सुना इव वृन्तात् पुष्पं ह्रियते।

व्याख्या—विशेषेण भाति वस्तु यस्मिन् तत् विभातं विभातस्य=प्रभातस्य वायुः=पवनः इति विभातवायुः । स्वाभाविकं=नैसर्गिकम् । ते=तवाजस्य । मुखस्य=आननस्य, मारुतः=वायुः आश्वासपवन इत्यर्थः । तस्य मुखमारुतस्य । सुरभेर्भावः सौरभ्यं=सौगन्ध्यम् । परस्य=अन्यस्य, गुणः=गन्धः इति परगुणस्तेन परगुणेन । ईप्सुः=प्राप्तुमिच्छुः । इव=यथा अनोकहानां=वृक्षाणाम् । श्लथं शिथिल पुष्पं=कुसुमम् । वृन्तात्=पुष्पबन्धनात् 'वृन्तं प्रसवबन्धनम्' इत्यमरः । हरति=आदत्ते गृह्णातीत्यर्थः । अरुणस्य=सूर्यस्य । अंशवः=किरणाः इति अरुणांशवस्तैः अरुणांशुभिः, भिन्नानि=विकसितानि, तैः अरुणांशुभिन्नैः । सरसि जातानि, तैः सरसिजैः कमलैः, सह=साकम् । संसृज्यते=संगच्छते ।

समा०–विभातस्य वायुरिति विभातवायुः। मुखस्य मारुतः मुखमारुतस्तस्य मुखमारुतस्य । परस्य गुणः परगुणस्तेन परगुणेन । अरुणस्य अंशवः अरुणांशवः, तैः भिन्नानि इति अरुणांशुभिन्नानि, तैः अरुणांशुभिन्नैः। सरसि जातानि, तैः सरसिजः ।

अभि०–प्रातःकालीनः पवनः स्वाभाविकं ते निश्वासवायोः सौगन्ध्यं परकीयगन्धेन प्राप्तुमिच्छुरिव वृक्षाणां शिथिलपुष्पाणि वृन्तात् गृह्णन् सूर्यकिरणसंपर्कात् विकसितकमलैश्च सह संमिलितो भवति, अतस्त्वं निद्रां त्यजेत्यभिप्रायः ।

हिन्दी—प्रातः काल का पवन वृक्षों के ढीले पुष्पों को गिरा रहा है और सूर्य की किरणों से खिले हुये कमलों को छूता हुआ चल रहा है, मानों तुम्हें सोया हुआ देखकर वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सुगन्धि को दूसरों से प्राप्त करने की इच्छा कर रहा है ॥६६॥

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः ।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम् ॥७०॥

सञ्जीविनी—ताम्रोदरेष्वरुणाभ्यन्तरेषु तरुपल्लवेषु पतितं निर्धौता या हारगुलिका मुक्तामणयस्तद्वद्विशदं हिमाम्भो लब्धपरभागतया लब्धोत्कर्षतया 'परभागो गुणोत्कर्षे' इति यादवः । अधरोष्ठे त्वदीयं सदशनार्चिर्दन्तकान्तिसहितं लीलास्मितमिवाभाति शोभते ॥७०॥

अन्वयः—ताम्रोदरेषु, तरुपल्लवेषु, पतितं निर्धौतहारगुलिकाविशदं, हिमाम्भः, लब्धपरभागतया, अधरोष्ठे त्वदीयं, सदशनार्चिः, लीलास्मितम्, इव, आभाति ।

वाच्य०—ताम्रोदरेषु तरुपल्लवेषु पतितेन निर्धौतहारगुलिकाविशदेन हिमाम्भसा लब्धपरभागतयाऽधरोष्ठे त्वदीयेन सदशनार्चिषा लीलास्मितेनेव आभायते ।

व्याख्या—ताम्रवत्=शुल्बवत् 'अथ ताम्रकम् । शुल्बं म्लेच्छमुखम्' इत्यमरः । उदरम्=आभ्यन्तरं येषां तानि, तेषु ताम्रोदरेषु अरुणाभ्यन्तरेष्वित्यर्थः । तरूणां=पादपानाम् । पल्लवानि=किसलयानि तेषु, तरुपल्लवेषु । पतितं=च्युतम्, हारस्य गुलिकाः इति हारगुलिकाः, निर्धौताः=प्रक्षालिताश्च ताः हारगुलिकाः=मुक्तामणयः इति निर्धौतहारगुलिकाः, तद्वत् विशदं=स्वच्छमिति निर्धौतहारगुलिकाविशदम् । हिमस्य=तुषारस्य, अम्भः=जलमिति हिमाम्भः । लब्धः=प्राप्तः, परभागः= गुणोत्कर्षः, येन स लब्धपरभागः, तस्य भावः लब्धपरभागता, तया लब्धपरभागतया । अधरश्चासौ ओष्ठश्चेति अधरोष्ठस्तस्मिन् अधरोष्ठे=अधस्तनदन्तच्छदे । तवेदं त्वदीयं=भवदीयम् । दशनानां=दन्तानाम् अर्चिः किरणः इति दशनार्चिः दशनार्चिषा सह वर्तते इति सदशनार्चिः । लीलया=विलासेन, स्मितम्=ईषद्धसनमिति लीलास्मितम् । इव यथा । आभाति=शोभते ।

समा०—ताम्रवत् उदरं येषां तानि ताम्रोदराणि, तेषु ताम्रोदरेषु । तरूणां पल्लवानि, तेषु तरुपल्लवेषु । हारस्य गुलिकाः हारगुलिकाः, निर्धौताश्च ताः हारगुलिकाः इति निर्धौतहारगुलिकाः, निर्धौतहारगुलिका इव विशदमिति निर्धौतहारगुलिकाविशदम् । हिमस्य अम्भः हिमाम्भः । लब्धः परभागो येन स लब्धपरभागस्तस्य भावस्तत्ता, तया लब्धपरभागतया । अधरश्चासौ ओष्ठश्चेति अधरोष्ठस्तस्मिन् अधरोष्ठे । तवेदं त्वदीयम् । दशनानाम् अर्चिरिति दशनार्चिः । दशनार्चिषा सह वर्तते इति सदशनार्चिः । लीलया स्मितमिति लीलास्मितम् ।

अभि०—अरुणाभ्यन्तरतरुपल्लवेषु रात्रौ पतितं स्वच्छमुक्ताफलसदृशं तुषारजलं प्राप्तोत्कर्षतया तवाधरोष्ठे वर्तमानं दन्तद्युतियुतं लीलाहास्यमिव शोभते ।

हिन्दी—लालवर्ण के वृक्षों के पत्तों पर पड़ी हुई, हार के स्वच्छ मोतियों के समान निर्मल ओस की बूँदें, लाल-लाल ओठों पर वर्तमान, दाँतों की चमक सहित तुम्हारे मुसकराने की तरह सुन्दर लग रही है ॥७०॥

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते
किं वा रिपूंस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥७१॥

सञ्जीविनी—प्रतापनिधिस्तेजोनिधिर्भानुर्यावन्नाक्रमते नोद्गच्छति 'आङ् उद्गमने' इत्यात्मनेपदम्। तावत् भानावनुदित एवेत्यर्थः। अह्नाय झटिति 'द्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय' इत्यमरः। अरुणेनानूरुणा 'सूरसूतोऽरुणोऽनूरुः' । इत्यमरः तमो निरस्तम्। तथाहि हे वीर! त्वय्यायोधनेषु युद्धेषु 'युद्धमायोधनं जन्यम्' इत्यमरः। अग्रसरतां पुरःसरतां याते सति तव गुरुः पिता रिपून्स्वयमुच्छिनत्ति किं वा नोच्छिनत्त्येवेत्यर्थः। न खलु योग्यपुत्रन्यस्तभाराणां स्वामिनां स्वयं व्यापारखेद इति भावः ॥७१॥

अन्वयः—प्रतापनिधिः, भानुः, यावत्, न आक्रमते, तावत्, अह्नाय, अरुणेन, तमः, निरस्तं "तथाहि" वीर, त्वयि, आयोधनाग्रसरतां, याते, "सति" तव, गुरुः, रिपून्, स्वयम्, उच्छिनत्ति, किं वा।

वाच्य०—प्रतापनिधिना भानुना यावत् न आक्रम्यते तावत्, अरुणः तमः निरस्तवान्, गुरुणा रिपवः स्वयमुच्छिद्यन्ते किं वा।

व्याख्या—प्रतापस्य=तेजसः, निधिः=शेवधिः इति प्रतापनिधिः। भातीति भानुः=सूर्यः यावत्=यावत्कालमित्यर्थः। न=नहि। आक्रमते=उद्गच्छति, तावत्= अनुदिते, एव भानावित्यर्थः। अह्नाय=झटिति। अरुणेन=सूर्यसारथिना, तमः= अन्धकारः। निरस्तं=दूरीकृतम् अपसारितमित्यर्थः। 'तथाहि' हे वीर=हे शूर। त्वयि=अजे, आयोधनेषु=युद्धेषु, अग्रसरताम्=पुरोगामितां याते=प्राप्ते सति। तव=अजस्य गुरुः=पिता रघुरित्यर्थः। रिपून्=शत्रून् स्वयम्=आत्मना उच्छिनत्ति= विनाशयति। किं=प्रश्ने वा इति नोच्छिनत्त्येवेत्यर्थः।

समा०—प्रतापस्य निधिरिति प्रतापनिधिः। अग्रे सरन्तीति अग्रसराः, तेषां भावः अग्रसरता, आयोधनेषु अग्रसरता, ताम् आयोधनाग्रसरताम्।

अभि०–यथा सूर्योदयात्पूर्वमेवारुणः झटिति तमो निवारयति, एवं हे वीर ! संग्रामेषु योधाग्रगण्ये त्वयि वर्तमाने सति तव पिता शत्रूणामुन्मूलनं स्वयमेव करिष्यति किं वा । अतस्त्वयापि पितुः पूर्वमेवोत्थाय स्वकर्तव्यं पालनीयम् ।

हिन्दी—सूर्योदय से पहले ही अरुण, संसार से अन्धकारको भगा देता है यह उचित ही है, योग्य सेवक के रहते स्वामी को स्वयं कार्य करने का कष्ट नहीं होना चाहिये, अतः संग्राम में सबसे आगे लड़नेवाले तुम्हारे समान योग्य पुत्र के रहते हुए, क्या तुम्हारे पिता जी को शत्रुओं का विनाश स्वयं करना पड़ेगा ? अर्थात् कभी नहीं ॥७१॥

शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः
स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते ।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगा-
द्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः ॥७२॥

सञ्जीविनी–उभाभ्यां पक्षाभ्यां पार्श्वाभ्यां विनीता अपगता निद्रा येषां ते उभयपक्षविनीतनिद्राः, अत्र समासविषय उभशब्दस्थान उभयशब्दप्रयोग एव साधुरित्यनुसंधेयम् । यथाह कैयटः—'उभादुदात्तो नित्यमि'ति नित्यग्रहणस्येदं प्रयोजनं वृत्तिविषय उभशब्दस्य प्रयोगो मा भूत् उभयशब्दस्यैव यथा स्यात् 'उभयपुत्र इत्यादि भवति' इति । मुखराण्युत्थानचलनाच्छब्द्रायमानानि शृङ्खलानि निगडानि कर्षन्तीति तथोक्तास्ते एव तव स्तम्बे रमन्त इति स्तम्बेरमा हस्तिनः 'स्तम्बकर्णयोरमिजपोः' इत्यच्प्रत्ययः 'हस्तिसूचकयोः' इति वक्तव्यात् । 'इभः स्तम्बेरमः पद्मी' इत्यमरः । 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक् । शय्यां जहति त्यजन्ति । येषां स्तम्बेरमाणां दन्ताः कोशा इव दन्तकोशाः दन्तकुड्मलास्तरुणारुणरागयोगाद्बालार्कारुणसंपर्काद्धेतोर्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव विभान्ति धातुरक्ता इव भान्तीत्यर्थः ॥७२॥

अन्वयः—उभयपक्षविनीतनिद्राः, मुखरशृङ्खलकर्षिणः, ते, स्तम्बेरमाः, शय्यां जहति, दन्तकोशाः, तरुणारुणरागयोगात्, भिन्नाद्रिगैरिकतटाः, इव विभान्ति ।

वाच्य०—उभयपक्षविनीतनिद्रैः मुखरशृंखलकर्षिभिः स्तम्बेरमैः, शय्या हीयते, येषां दन्तकोशैः तरुणारुणरागयोगात् भिन्नाद्रिगैरिकतटैः इव भायते ।

व्याख्या—उभौ=द्वौ, च तौ पक्षौ=पार्श्वौ इति उभयपक्षौ, विनीता=त्यक्ता निद्रा=स्वापः येषां ते उभयपक्षविनीतनिद्राः । मुखराणि=शब्दायमानानि

शृंखलानि=निगडानि, कर्षन्ति=आकर्षणं कुर्वन्तीति मुखरशृंखलकर्षिणः। ते=पूर्वोक्ताः "तव" स्तम्बे=दर्भादितृणसमूहे रमन्ते=क्रीडन्तीति स्तम्बे-रमाः=गजाः, शय्यां=शयनस्थानम्। जहति=त्यजन्ति। येषां=स्तम्बेरमाणाम्। दन्ता रदाः, कोशाः=कुड्मलाः इव इति दन्तकोशाः 'रदना दशना दन्ता रदाः, कोशोऽस्त्री कुड्मले' इति चामरः। तरुणः=बालश्चासौ अरुणः= अर्कश्चेति तरुणारुणः=बालसूर्यः, तस्य रागः=रक्तिमा, इति तरुणारुणरागः, तस्य योगः=सम्पर्कस्तस्मात् तरुणारुणरागयोगात्। अद्रेः=पर्वतस्य गरिकतटाः= गैरिकशिखराः इति अद्रिगैरिकतटाः। भिन्नाः=छिन्नाः अद्रिगैरिकतटा यैस्ते, भिन्नाद्रिगैरिकतटाः। इव=यथा विभान्ति=शोभन्ते।

समा०—उभौ च तौ पक्षौ उभयपक्षौ, उभयपक्षाभ्यां विनीता निद्रा येषां ते उभयपक्षविनीतनिद्राः। मुखराणि शृंखलानि कर्षन्तीति मुखरशृंखलकर्षिणः। दन्ताः कोशाः इवेति दन्तकोशाः। तरुणश्चासौ अरुण इति तरुणारुणः, तरुणारुणस्य रागः, तस्य योगः तस्मात् तरुणारुणरागयोगात्। गैरिकाश्च ते तटा इति गैरिकतटाः, अद्रेः गैरिकतटा इति अद्रिगैरिकतटाः, भिन्नाः अद्रि-गैरिकतटाः यैस्ते भिन्नाद्रिगैरिकतटाः।

अभि०—पार्श्वद्वयपरिवर्तनपूर्वकं त्यक्तनिद्राः उत्थानचलनेन झणझणेति शब्दायमानलोहशृंखलककर्षिणस्ते सेनागजेन्द्राः शयनस्थानात् उत्तिष्ठन्ति, येषां च गजेन्द्राणां दन्ताः प्रातःकालिकसूर्यसम्पर्कात्, गैरिकधातुरक्ता इव भान्ति।

हिन्दी—दोनों करवट बदलकर निद्रा को छोड़नेवाले और खनखनाती हुई सांकलों को खींचते हुए तुम्हारी सेना के हाथी उठ गये हैं। बाल सूर्य की लाल किरणों के सम्पर्क से उनके दाँत ऐसे शोभित हैं मानों उन्होंने पर्वत के गैरिक शिखर तोड़े हों ॥ ७२ ॥

दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु
निद्रां विहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि
लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः ॥७३॥

सञ्जीविनी—हे वनजाक्ष नीरजाक्ष! 'वनं नीरं वनं सत्त्वम्' इति शाश्वतः। दीर्घेषु पटमण्डपेषु नियमिता बद्धा वनायुदेश्या वनायुदेशे भवाः 'पारसीका

वनायुजाः' इति हलायुधः। अमी वाहा अश्वा निद्रां विहाय पुरोगतानि लेह्यान्यास्वाद्यानि सैन्धवशिलाशकलानि 'सैन्धवोऽस्त्री शीतशिवं माणिमन्थं च सिन्धुजे' इत्यमरः। वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति मलिनानि कुर्वन्ति। उक्तं च सिद्धयोगसंग्रहे-'पूर्वाह्णकाले चाश्वानां प्रायशो लवणं हितम्। शूलमोहविबन्धघ्नं लवणं सैन्धवं वरम्' इत्यादि।

अन्वयः—वनजाक्ष! दीर्घेषु, पटमंडपेषु नियमिताः, वनायुदेश्याः अमी, वाहाः निद्रां विहाय पुरोगतानि, लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति।

वाच्य०—पटमण्डपेषु नियमितैः वनायुदेश्यैः, अमीभिः वाहैः सैन्धवशिलाशकलानि मलिन्यन्ते।

व्याख्या—वने=जले, जातम्=उत्पन्नं, वनजं=कमलमिव अक्षिणी=नेत्रे यस्य स तत्संबुद्धौ हे वनजाक्ष! अज! 'पयःकीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः। दीर्घेषु=आयतेषु। पटनिर्मिताः मण्डपाः पटमण्डपास्तेषु पटमण्डपेषु=उपकार्यासु। नियमिताः=संयताः बद्धा इत्यर्थः। वनायुदेशे भवाः वनायुदेश्याः=पारसीकाः। अमी=पुरःस्थिताः, वाहाः=घोटकाः, सेनातुरंगा इत्यर्थः। निद्रां=स्वापं विहाय=परित्यज्य। पुरोगतानि=सम्मुखस्थानि। लेढुं योग्यानि लेह्यानि=आस्वाद्यानि। सिन्धुदेशे भवः सैन्धवः, तस्य सैन्धवस्य=लवणस्य, शिलाः=दृषदः इति सैन्धवशिलाः, सैन्धवशिलानां शकलानि=खण्डान् इति सैन्धवशिलाशकलानि। वक्त्रस्य=मुखस्य। ऊष्मा=उष्णता तेन वक्त्रोष्मणा। मलिनयन्ति=मलिनानि कुर्वन्ति।

समा०—वने जाते वनजे इव अक्षिणी यस्य सः, तत्संबुद्धौ हे वनजाक्ष! पटनिर्मिताः मण्डपा इति पटमण्डपास्तेषु पटमण्डपेषु। वनायुदेशे भवा वनायुदेश्याः। सिन्धौ (देशे) भवं सैन्धवम्, सैन्धवस्य शिलाः सैन्धवशिलाः, तासां शकलानि इति सैन्धवशिलाशकलानि। वक्त्रस्य ऊष्मा वक्त्रोष्मा तेन वक्त्रोष्मणा।

अभि०—हे कमललोचन अज! पटनिर्मिताश्वशालासु संयताः पारसीका एते तव सेनाघोटकाः निद्रां त्यक्त्वा, लेह्यलवणशिलाखण्डान् निजमुखश्वासौष्ण्येन मलिनीकुर्वन्ति।

हिन्दी—हे कमल के समान नेत्रवाले अज! बड़े-बड़े, पटनिर्मित मण्डपों में बँधे हुए, काबुलदेश के ये घोड़े, नींद को त्यागकर चाटने योग्य सैन्धा नमक की शिलाओं के टुकड़ों को अपने मुख की गरमी से मलिन कर रहे हैं ॥७३॥

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः ॥ ७४ ॥

सञ्जीविनी—म्लानः पुष्पोपहारः पुष्पपूजा म्लानत्वादेव विरलभक्तिर्विरलरचनो भवति। प्रदीपाश्च स्वकिरणानां परिवेषस्य मण्डलस्योद्भेदेन स्फुरणेन शून्या भवन्ति निस्तेजस्का भवन्तीत्यर्थः। अपि चायं मञ्जुवाङ् मधुरवचनः पञ्जरस्थस्ते तव शुकस्त्वत्प्रबोधनिमित्तं प्रयुक्तामुच्चारितां नोऽस्माकं गिरं वाणीमनुवदति अनुकृत्य वदतीत्यर्थः। इत्थं प्रभातलिङ्गानि वर्तन्ते अतः प्रबोद्धव्यमिति भावः।

अन्वयः—म्लानपुष्पोहारः, विरलभक्तिः, भवति, प्रदीपाः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः, भवन्ति, अपि च अयं, मञ्जुवाक्, पञ्जरस्थः, ते शुकः, त्वत्प्रबोधप्रयुक्तां, नः गिरम्, अनुवदति।

वाच्य०—म्लानपुष्पोपहारेण विरलभक्तिना भूयते। प्रदीपैः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्यैः भूयते। अपि चानेन मञ्जुवाचा पञ्जरस्थेन ते शुकेन त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता नः गीरनूद्यते।

व्याख्या—म्लानः=निःश्वासेन म्लानतां गतः, यः पुष्पोपहारः=कुसुमोपायनमिति म्लानपुष्पोपहारः। विरला=शिथिला, भक्तिः=रचना यस्य सः विरलभक्तिः। भवति=जायते। जात इत्यर्थः। प्रदीपाः=दीपकाः। स्वस्य किरणाः स्वकिरणास्तेषां स्वकिरणानां=निजरश्मीनां, परिवेषः=मण्डलं तस्य उद्भेदः = स्फुरणमिति स्वकिरणपरिवेषोद्भेदः तेन शून्याः=रहिता इति स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः भवन्ति। नष्टप्रभाः जाता इत्यर्थः। अपि च अयम्=एषः, मञ्जुः = मनोहरा वाक्=वाणी यस्य स मञ्जुवाक्। पञ्जरे तिष्ठतीति पञ्जरस्थः पञ्जरमध्यवर्ती। ते=तव। शुकः=कीरः। तव=अजस्य, प्रबोधः=उत्थानम्, तत्र प्रयुक्ता = कथिता इति त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता, ताम्। नः = अस्माकं गिरं = वाणीं=वचः। अनुवदति=अनुब्रवीति अस्मदुक्तस्तुतिपाठं तथैव कथयति इत्यर्थः।

समा०—पुष्पाणामुपहारः पुष्पोपहारः, म्लानश्चासौ पुष्पोपहारः इति म्लानपुष्पोपहारः। विरला भक्तिर्यस्य स विरलभक्तिः। स्वस्य किरणानां परिवेषः,

तस्य उद्भेदेन शून्याः इति स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः । तव प्रबोधाय प्रयुक्ता, तां त्वत्प्रबोधयुक्ताम् । मञ्जुर्वाक् यस्यासौ मञ्जुवाक् ।

अभि०—रात्रौ शयने उपहारार्थमानीतः पुष्पहारः ते मुखनिश्वासेनेदानीम् म्लानः संजातः । तस्य च गुम्फनमपि विरलं जातं, दीपाश्च हतप्रभाः संजाताः, पञ्जरे स्थितोऽय कीरोऽपि तव प्रबोधायोदीरितं नः स्तुतिपाठमनुवदति । इत्थं प्रभातचिह्नानि वर्तन्ते अतस्त्वयापि प्रबोद्धव्यमिति ।

हिन्दी—रात्रिकी सजावटके लिए भेट में आए हुए पुष्प मुरझाकर गिर रहे हैं और दिन का प्रकाश हो जानेके कारण, दीपक भी अपने प्रकाश पुञ्ज से हीन हो गये हैं । अर्थात् फीके पड़ गये हैं और पिञ्जरे में बैठा हुआ मधुर बोलने वाला यह तुम्हारा सुग्गा भी तुम्हें जगानेके लिए हम लोगोंसे प्रयोग किये गये गीतोंको दुहरा रहा है । अतः तुम भी अब उठ जाओ ॥ ७४ ॥

इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः
सपदि 'विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार ।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः ॥ ७५ ॥

सञ्जीविनी—इतीत्थं विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैर्वैतालिकैः पुत्रग्रहणं समानवयस्कत्वद्योतनार्थम् । सपदि विगतनिद्रः कुमारः तल्पं शय्याम् 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः । उज्झाञ्चकार विससर्ज । 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्याम्प्रत्ययः । कथमिव मदेन पटु मधुरं निनदद्भिः राजहंसैर्बोधितः सुप्रतीकाख्यः सुरगज ईशान-दिग्गजः गङ्गाया इदं गाङ्गं सैकतं पुलिनमिव । 'तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्' इत्यमरः । 'सिकताशर्कराभ्यां च' इत्यण्प्रत्ययः । सुप्रतीकग्रहणं प्रायशः कैलासवासिनस्तस्य नित्य गङ्गातटविहारसंभवादित्यनुसंधेयम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—इति, विरचितवाग्भिः वन्दिपुत्रैः, सपदि, विगतनिद्रः, कुमारः, तल्पम्, उज्झांचकार, 'कथमिव' मदपटु, निनदद्भिः, राजहंसैः, बोधितः, सुप्रतीकः सुरगजः, गाङ्गं, सैकतम्, इव ।

वाच्य०—विगतनिद्रेण कुमारेण तल्पमुज्झाञ्चक्रे, बोधितेन सुप्रतीकेन सुरगजेन गाङ्गं सैकतमिव ।

व्याख्या—इति=इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण, विरचिता=प्रणीता, वाक्=स्तुतिवचनं यैस्ते, तैः विरचितवाग्भिः। वन्दिनां=स्तुतिपाठकानां, पुत्राः=सुतास्तैः वन्दिपुत्रैः वैतालिकैरित्यर्थः। सद्यः=तत्क्षणमेव। विगता=नष्टा, त्यक्तेत्यर्थः, निद्रा=स्वापो यस्य स विगतनिद्रः। कुमारः=युवराजोऽजः तल्प=शय्याम्। उज्झाञ्चकार=तत्याज विससर्ज त्यक्तवानित्यर्थः। "कथमिव" मदेन=हर्षेण, पटु=मधुरमिति मदपटु 'हर्षेऽप्यामोदवन्मदः' इत्यमरः। यथा स्यात्तथा निनदद्भिः=कूजद्भिः हंसानां राजानः इति राजहंसास्तैः राजहंसैः=कलहंसैः। बोधितः=उत्थापितः शयनादित्यर्थः। सुप्रतीकः=सुप्रतीकनामा। सुराणां=देवानां, गजः=हस्ती इति सुरगजः ईशानदिग्गज इत्यर्थः। गंगाया इदं=गांगं=गङ्गासंबन्धि, सिकताप्रचुरं सैकत=पुलिनम्, इव=यथा।

समा०—विरचिता वाक् यैस्ते विरचितवाचस्तैः विरचितवाग्भिः। वन्दिनां पुत्राः वन्दिपुत्रास्तैः वन्दिपुत्रैः। विगता निद्रा यस्य स विगतनिद्रः। हंसानां राजानः राजहंसास्तैः राजहंसैः। सुराणां गजः सुरगजः।

अभि०—मधुरं कूजद्भिः कलहंसैः, बोधितः ईशानदिग्गजः सुप्रतीकः यथा गङ्गायाः सैकतं त्यजति, तथैव पूर्वोक्तं स्तुतिपाठं पठद्भिः वैतालिकैः प्रबोधितोऽजस्तत्क्षणमेव तल्पं त्यक्तवान्।

हिन्दी—इस प्रकार सुन्दर बचनों की रचना करनेवाले चारणों की वाणी से जगे हुए कुमार अज ने, तत्काल ही पलंग को वैसे ही छोड़ दिया, जैसे मधुर शब्द करनेवाले हंसों के निनाद से जगा ईशानकोण का पहरेदार देवगज सुप्रतीक आकाशगङ्गा के रेतीले तट को छोड़ देता है ॥ ७५ ॥

अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम् ॥ ७६ ॥

सञ्जीविनी—अथोत्थानानन्तरमञ्चितानि चारूण्यक्षिपक्ष्माणि यस्य सोऽजः शास्त्रे दृष्टमवगतं दिवसमुखोचितं प्रातःकालोचितं विधिमनुष्ठानमवसाय्य समाप्य स्यतेर्ण्यन्ताल्ल्यप्। कुशलैः प्रसाधनदक्षैर्विरचितोऽनुकूलः स्वयंवरोचितो वेषो नेपथ्यं यस्य स तथोक्तः सन्स्वयंवरस्थं क्षितिपसमाजं राजसमूहमगादगमत् 'इणो गा लुङि' इति गादेशः। पुष्पिताग्रावृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्-'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति ॥ ७६ ॥

अन्वयः—अथ, अञ्चिताक्षिपक्ष्मा, शास्त्रदृष्टं, दिवसमुखोचितं, विधिम्, अवसाय्य, कुशलविरचितानुकूलवेषः "सन्" स्वयंवरस्थं, क्षितिपसमाजम्, अगात् ।

वाच्य०—अञ्चिताक्षिपक्ष्मणा कुशलविरचितानुकूलवेषेण 'सता' स्वयंवरस्थः क्षितिपसमाजः अगामि ।

व्याख्या—अथ=उत्थानानन्तरम् । अञ्चितानि=चारूणि=सुन्दराणीत्यर्थः, अक्ष्णां=नेत्राणां, पक्ष्माणि=लोमानि यस्य सः अञ्चिताक्षिपक्ष्मा । शास्त्रे =आगमे दृष्टं ज्ञातमिति शास्त्रदृष्टम् । दिवसस्य=दिनस्य, .. मुखम्=आननम्, आरम्भ इत्यर्थः, इति दिवसमुखम्, दिवसमुखे उचितं=योग्यं कर्तव्यमिति दिवसमुखोचितम् । विधिम् अनुष्ठानम्, अवसाय्य=निर्वर्त्य कुशलैः=प्रसाधनदक्षैः, विरचितः=सम्पादितः, अनुकूलः=स्वयंवरयोग्यः वेषः=नेपथ्य यस्य सः कुशलविरचितानुकूलवेषः "सन्" । स्वयंवरे=स्वतः पाणिग्रहणे तिष्ठतीति स्वयंवरस्थस्तं स्वयंवरस्थम् । क्षितिं=पृथिवीं, पान्ति=रक्षन्तीति क्षितिपास्तेषां समाजः=समूह इति-क्षितिपसमाजस्तं क्षितिपसमाजम् । अगात्=अव्रजत् ।

समा०—अञ्चितानि अक्ष्णां पक्ष्माणि यस्य सः अञ्चिताक्षिपक्ष्मा । शास्त्रे दृष्टः शास्त्रदृष्टः, तं शास्त्रदृष्टम् । दिवसस्य मुखं दिवसमुखं तत्र उचितः, तं दिवसमुखोचितम् । कुशलैः विरचितः अनुकूलः वेषो यस्य सः कुशलविरचितानुकूलवेषः स्वयंवरे तिष्ठतीति स्वयंवरस्थस्तं स्वयंवरस्थम् । क्षितिं पान्तीति क्षितिपास्तेषां समाजः तं क्षितिपसमाजम् ।

अभि०—तल्पत्यागानन्तरं सुन्दरनेत्रलोमवान्, अजः शास्त्रोदितं प्रातः कृत्यं सन्ध्यावन्दनादिकं विधाय, प्रसाधनकुशलैः सम्पादितसुवेषः सन् स्वयंवरस्थराजसमूहमगमत् ।

हिन्दी—इस प्रकार शय्या छोड़ने के पश्चात् सुन्दर पलकोंवाले अज प्रातः काल की सम्पूर्ण सन्ध्यावन्दनादि क्रियाएं समाप्त करके, नेपथ्य रचना के विशेषज्ञों के द्वारा विरचित स्वयंवर के योग्य वेषभूषा से सजधजकर स्वयंवर में बैठे राजाओं के समाज में चले गये ॥ ७६ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्येऽजस्वयंवराभिगमनो नाम पञ्चमः सर्गः सम्पूर्णः ॥

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

(जिनमें मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका, नोट्स एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री सहित)

अभिषेक-नाटक (भासकृत) (सं० हिन्दी टीका) : सं० मोहनदेव पंत — १०
अमरुशतकम्—अमरूक — १६
उत्तररामचरित : आनन्दस्वरूप (अजिल्द) ३५; (सजिल्द) ५०
कथासरित्सागर : सोमदेव—सं० जगदीशलाल शास्त्री (अ) ४०; (स) ६०
काव्यप्रकाश : (प्रथम भाग)—रामसागर त्रिपाठी (अ) ३५; (स) ५०
कादम्बरी : मोहनदेव पन्त (पूर्वार्द्ध) (अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ७०
(उत्तरार्द्ध) (अजिल्द) ३५; (सजिल्द) ५५
किरातार्जुनीयम् (१–४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय — १४
कुमारसंभव (१–२ सर्ग) : जगदीशलाल शास्त्री — ८
चन्द्रालोक (सं० हिन्दी टीका) सुबोधचन्द्र पन्त — १२
चित्रकाव्यकौतुक (संस्कृत) : रामरूप पाठक, सं० प्रेमलता शर्मा — १२
दशकुमारचरित (सम्पूर्ण) सुबोधचन्द्र पन्त एवं विश्वनाथ झा — १५
दशरूपक (सं० हिन्दी टीका) : बी० एन० पाण्डे — १८
दूतवाक्य (भासकृत) (सं० हिन्दी व्या०) : रमाशंकर त्रिपाठी — २.५०
ध्वन्यालोक : (सं० हिन्दी टीका) (तृतीय व चतुर्थ उद्योत)
रामसागर त्रिपाठी (अजिल्द) ३५; (सजिल्द) ५०
नैषधीयचरित (सं० हिन्दी टीका) (६-९ सर्ग) : मोहनदेव पन्त — १८
पंचतन्त्र (सम्पूर्ण) : श्यामाचरण पाण्डेय (अजिल्द) ३०; (सजिल्द) ५०
प्रसन्नराघव : रमाशंकर त्रिपाठी — १५
प्रतिमानाटक (सं० हिन्दी टीका) : श्रीधरानन्द शास्त्री — १५
मालविकाग्निमित्र : सं० संसारचन्द्र एवं मोहनदेव पन्त (अ) १८; (स) ३०
मेघदूत : संसारचन्द्र (अजिल्द) १८; (सजिल्द) ३०
मृच्छकटिक (सं० हिन्दी टीका) : रमाशंकर त्रिपाठी (अ) ५०; (स०) ६०
रामाभ्युदययात्रा : सं० श्यामाचरण पाण्डेय — ७
रत्नावली नाटिका : बी० एन० पाण्डेय — १४
विक्रमोर्वशीय : रामविलास त्रिपाठी — १५
वेणीसंहार : रमाशंकर त्रिपाठी — २२
वृत्तरत्नाकरम् : श्रीधरानन्द — ८
शिशुपालवध (१–४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय — १६.५०
शुकनासोपदेश : हरिश्चन्द्र विद्यालंकार — २५
साहित्यदर्पण : शालिग्राम शास्त्री (अजिल्द) ५०; (सजिल्द) ८०
सौन्दरनन्द (अश्वघोष कृत) : अनु० सूर्यनारायण चौधरी — २८
स्वप्नवासवदत्त : जयपाल विद्यालंकार — २५
हितोपदेश (मित्रलाभ) : विश्वनाथ शर्मा — ६

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास